ओ३म्

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

संध्या-हवन एवं भजन

रामवती पुष्कर लाल आर्य चेरिटेबुल ट्रस्ट
१०, किशन लाल बर्मन मार्ग
सलकिया, हवड़ा
अक्षय तृतीया सम्वत् २०४३ वि०

१२।५।८६ ई०   मूल्य : पढ़ें पढ़ायें एवं सन्ध्या हवन करें।

असूर्या नामते लोका अन्धेन तमसा वृताः।
तास्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्म हनो जनाः।

यजु ४०।

अर्थ जो मनुष्य आत्मज्ञान के विरुद्ध असत्य व्यवहार वचन, कर्म से करते हैं। या अन्य प्राणियों को स्वार्थ वश ·· पहुँचाते या आत्मा का स्वयं हनन करते है या मादक द्र· सेवन करके बुद्धि भ्रष्ट करते हैं या स्वार्थ वश वेद विपरीत की रचना प्रचार असत्य भाषण अश्लील उपन्यासों की रचना व हैं जिससे समाज का पतन होता हो; वेदोक्त ईश्वरीय सत्ता त्य· कर जड़ोपासनादि कर्म ज्ञान के विपरीत करने से वह मनुष्य मृत्यु के बाद ज्ञान से रहित पशु योनियाँ प्राप्त करते हैं। यह आत्मा का पतन है।

विषय-सूची

क्रमांक विषय	पृष्ठ-संख्या

——

॥ ओ३म् ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर् दुरितानि परासुव ।
यद् भद्रं तन्न आ सुव । यजु० ३०।३

✱

हे देव सवितर् विश्वकर्त्ता, शुद्ध रूव महान् है।
दुरितानि दुर्गुण दुर्व्यसन से, मुक्त करता त्राण है।
आचरण दो शुद्ध मुझ में, भद्र भावोद्गान है।
पापहर्ता शुद्धकर्ता, जो सुखद् भगवान् है।

✱

पुष्कर लाल आर्य
रामवती पुष्कर लाल आर्य चैरिटेबुल ट्रस्ट,
१०, किशन लाल बर्मन मार्ग,
सलकिया, हवड़ा

अपनी बात

विश्व के संचालक सृष्टि कर्ता सब गुरूओं के गुरू परम पिता परमेश्वर को शतवार नमन है, उनके प्रति कृतज्ञता है, जिसने मानव को "वेद" स्वरूप ज्ञान प्रदान किया, एवं मुझे उन मार्गदर्शकों का संग दिया जिन्हें यह ज्ञान अभीष्ट था और जो उसके सच्चे मार्ग को देख चुके थे।

महर्षि दयानन्द को शतवार नमन है उनके प्रति हार्दिक आभार है जिन्होंने कण्टकाकीर्ण तृणसंकुल भूमि पर ढके पंथ को अपनी प्रखर मेधा एवं तपस्या से पुनः स्वच्छ कर इधर उधर भटक रहे मानव को सच्चा एवं सीधा मार्ग दिखाया। जिस पर चलकर उस आदित्य वर्ण वाले परमेश्वर को अन्धकार को दूर करनेहारे उस महान पुरुष को जाना जा सकता है जिसे जानकर योगी जन (भक्तजन) मृत्यु को जीत लेते हैं एवं जिसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है।

अपने बड़े भाई स्वर्गीय राम प्रताप जी का भी ऋणी एवं कृतज्ञ हूँ जो मुझे आर्य समाज के सत्संगों में बलपूर्वक ले जाया करते एवं आर्य समाज के प्रवचनों को सुनने के लिये बाध्य करते थे।

फिर तो चस्का ऐसा लगा मानों कई जन्मों का संस्कार आत्मा पर उभड़ आया हो। व्यापार के कार्यों से बाहर गया रहता तो कलकत्ता वापस आने पर यही प्रयत्न होता कि सत्संग का समय यदि हुआ रहता तो पहले घर न जाकर समाज में (आर्य समाज हवड़ा में) ही डेरा डालता और सत्संग के पश्चात घर जाता।

इसी प्रेरणा से मैंने दार्जिलिंग, खरस्यांग, सिलीगुड़ी एवं जिला भिवानी में, तिगनाड़ा तथा भिवानी हाउसिंग बोर्ड में आर्य समाजों की स्थापना एवं बड़ा बाजार कलकत्ता में आर्य महिला समाज की स्थापना की।

इसमार्ग पर मुझे प्रेरणा देनेवाले स्वर्गीय आचार्य रमाकान्त जी शास्त्री के प्रति हार्दिक कृतज्ञता है जिन्होंने महर्षि के बनाये ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश को मेरे हाथों में दिया एवं उसे निरंतर अध्ययन करने की प्रेरणा मुझे देते रहे। महर्षि की वाणी सच्चे अर्थों को प्रकाशित करने वाले इस परम पुनीत ग्रन्थ का संस्कार मेरे हृदय पर पूज्य आचार्य जी ने ही डाला जिससे मैं अन्यत्र न भटक कर इस मार्ग को अपनाया। अपनी सन्तानों को तथा मिलने वाले मित्रों को भी इसमार्ग पर लाने का जी जान से प्रयत्न किया, जिनमें श्री पुरुषोत्तम लाल जी सर्राफ ज्वलन्त उदाहरण हैं। नहीं तो न जाने किस मार्ग पर भटकता जो आत्मा को विपरीत दिशा की ओर ले जाकर किस गर्त में गिरा देता। अतः हम पूज्य आचार्य स्व० रमाकान्त जी शास्त्री के ऋणी हैं। मैं भी उन्हे गुरु मानकर उनके उपदेशों को जीवन में ढालने का प्रयत्न करता रहा एवं अपनी

श्रद्धा को व्यक्त करने के लिये जो कुछ भी मुझसे बन पड़ता फलफूल उन्हें अर्पित करता रहा चाहे वह कितना भी कम रहा हो पर उसमें श्रद्धा का भाव अधिक देखकर पूज्य आचार्य जी उसे परम हर्ष से स्वीकार करते और मुझे आशीर्वाद प्रदान किया करते।

इस सम्बन्ध में मैं अपनी धर्मपत्नी श्रीमती रामवती आर्या के प्रति भी कृतज्ञ हूँ जो कभी आलस्य, प्रमाद या अन्य विषयों में मुझे झुकते देखकर धर्म के मार्ग से कभी विचलित न होने के लिये प्रेरित किया करती रही है, एवं धर्म पथ पर सदा अडिग रहने की प्रेरणा देती रही हैं। उन्होंने मुझे इस पथ पर दृढ़व्रती बनाने के लिये प्रेम और कठोरता दोनों ही उपायों को अपनाया था। उनके ही दृढ़ संकल्प और धर्म परायणता के फलस्वरूप अपनी सभी सन्तानें धर्म के प्रति आस्थावान एवं दृढ़व्रती बन सकीं।

श्रद्धेया बहन डॉ० सुनीति शर्मा एवं उनके भाई श्रद्धेय पं० वेद भूषण जी शर्मा के प्रति आभारी हूँ जिनका पद्यानुवाद इस पुस्तक में उद्धृत है।

ईश्वर को पुनः धन्यवाद करते हुये हम सभी महानुभावों से आशा करते हैं कि महर्षि दयानन्द के दिखाये मार्ग पर चलें, और अपना प्राचीन गौरव प्राप्त करें।

—पुष्करलाल आर्य

दो शब्द

आर्य समाज एवं ऋषि मिशन के दीवाने, पाखण्ड के विरोधी, साहसी, कर्मठ कार्यकर्त्ता श्री पुष्कर लाल जी आर्य के प्रति दो शब्द लिख देने का लोभ मैं संवरण नहीं कर सकता। श्री पुष्कर लाल जी आर्य जिन्होंने वैदिक संध्या हवन की यह पुस्तक छपवाई है धर्म प्रेमी एवं लगनशील व्यक्ति हैं।

वे जहाँ कहीं भी जाते हैं आर्य समाज की पुस्तकों से भरा झोला उनके हाथ में रहता ही है। इस वृद्धावस्था में भी उनमें इतना साहस है कि अपने स्वास्थ्य पर ध्यान न देते हुए आर्य समाज के प्रचारार्थ घूमते रहते हैं। बस हो या ट्रेन साथ में बैठे लोगों को आर्य समाज से परिचित कराना नहीं भूलते। उन्हें थोड़ा बहुत साहित्य पढ़ने के लिए दे ही दिया करते हैं।

उन्होंने लोक सभाध्यक्ष श्री बलराम जाखड़, भूतपूर्व प्रधानमंत्री मुरारजी देशाई, श्रीमती इन्दिरा गाँधी तथा श्री जगजीवन राम जी को भी सत्यार्थ प्रकाश एवं अन्य साहित्य भेंट किए।

ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में से जो इन्हें अधिक अच्छे लगते हैं ऐसे उद्धरणों को छाँट कर छपवाया करते और उन्हें वितरित किया करते हैं।

आर्य विद्वान एवं सन्यासी इनके यहाँ उचित सत्कार और सम्मान पाते हैं, इनकी धर्म पत्नी, पुत्र, पुत्र वधुएं एवं पुत्रियाँ सभी आर्य समाज के प्रति निष्ठावान एवं श्रद्धालु हैं।

इस सम्दर्भ में मैं एक छोटी सी घटना लिख देना चाहता हूँ। जिसे देखकर मुझे इनकी सच्ची लगन एवं निष्ठा की परख होती है। एक दिन किसी कार्यवश इनसे मिलने इनके निवास स्थान १०, किशन लाल वर्मन मार्ग बांधा घाट गया। उस समय प्रातः कालीन हवन समाप्त हो रहा था। हवन के पश्चात भजन हुए। उन्होंने पूछ दिया देवराज (उनके ज्येष्ठ पुत्र का नाम) अभी तक नहीं आया कहां है ? उनकी धर्म पत्नी ने कहा ऊपर है कोई विशेष कार्य है। बस इतनी सी बात पर श्री पुष्कर लाल जी की बहुत दुखी हो गये कहने लगे कि महर्षि ने इसी लिये इतना कष्ट झेला था। लोगों की गालियां और धमकियां सही हम उन्हें बैठकर, स्मरण तक नहीं कर पाते। बहुत समझाने पर वे शान्त हो सके।

आर्य समाज हवड़ा में यज्ञशाला, कार्यालय, औषधालय, ऊपर का सभागार उनके प्रयत्नों से ही पूरे हो सके हैं। आज भी हरियाणा में अपने गाँव नलवा में आर्य समाज का भव्य भवन बनवाने का प्रयत्न कर रहे हैं। यद्यपि अभी उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं है किन्तु उस ओर उनका ध्यान न रहकर अपनी धुन में ऋषि के कार्यों को पूरा करने में प्रयत्न शील हैं।

प्रभु उन्हें अच्छी स्वास्थ्य दे यह मेरी शुभकामना है।

—शिवशंकर तिवारी

ओ३म्

प्रातः कालीन मंत्र

ओ३म् प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे
प्रातर्मित्रा वरुणा प्रातरश्विना,
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं
प्रातस्सोममुत रुद्रं हुवेम । यजु० ३४।३४

प्रात काल की इस वेला में, हे प्रकाश रूप ! तुम को ध्याते,
ब्रह्मदेव की स्वर्ण सन्धि में ऐश्वर्य रूप ! हम तुम्हें बुलाते
पावन अमृतमयी वेला में प्राण-पान सम, प्रिय को ध्याते
सूर्य चन्द्र के धर्ता तुम हो, तब चरणों में शीश नवाते
हे सेवनीय पोषण कर्ता, ब्रह्माण्ड वेद स्रष्टा स्वामी,
रूद्र रूप औ जन्म प्रदाता, सकल ज्ञान अन्तर्यामी ।
सुप्रभात की वेला में हम, मस्तक तुम्हें नवाते हैं ।
सकल ज्ञान उत्तम श्रद्धा से, मुदमय तुम्हें बुलाते हैं ।

अर्थ—

हे स्त्री पुरुषों ! जैसे हम विद्वान उपदेशक लोग (प्रातः प्रभात बेला में (अग्निम् स्वप्रकाश स्वरुप (प्रात) (इन्द्रम्) परमैश्वर्य का दाता और परमैश्वर्य युक्त (प्रातः) (मित्रा वरुणा) प्राण उद्यान के समान प्रिय और सर्व शक्ति मान (प्रातः अश्विना) सूर्य चन्द्र को जिसने उत्पन्न किया है ! उस परमात्मा की

(ह्वामहे) स्तुत करते हैं। और (प्रातः) (भगम्) भजनीय सेवनीय ऐश्वर्य युक्त (पूषणं) पुष्टिकर्ता (ब्रह्मणस्पतिम्) अपने उपासक वेद और ब्रह्माण्ड के पालन करने हारे (प्रातः) सोमम् अन्तर्यामी प्रेरक (उत और (रूद्रम्) पापियों को रुलाने हारे और सर्व रोग नाशक जगदीश्वर की (हुवेम) स्तुति प्रार्थना करते हैं। वैसे प्रातः समय में तुम सब भी किया करो।

ओ३म् प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम
वयम् पुत्रमदितेर्यो विधर्त्ता ।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा
चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥ २ ॥ यजु-३४।३५

हो जयशील विभव के दाता, उग्र सूर्य के कर्त्ता हो
नाना विध लोको के धारक, चहुं दिशि सब विधिधर्ता हो
सदा सभी के ज्ञाता हो तुम, दुर्जन दण्ड विधाता हो,
सकल ज्ञान के दाता हो तुम, सुख आनन्द प्रदाता हो।
सुप्रभात की बेला में हम, मस्तक तुम्हे नवाते हैं।
सकल ज्ञान उत्तम श्रद्धा से, मुदमय तुम्हें बुलाते हैं।

अर्थ :

(प्रातः पांच घड़ी रात्रि रहे (जितम् जयशील (भगम्) ऐश्वर्य दाता के उग्रम) तेजस्वी अदितेः) अन्तरिक्ष के (पुत्रम् पुत्र रूप सूर्य की उत्पत्ति करने हारे और यः जो सूर्य आदि लोको का (विधर्ता) विशेष करके धारण करने हारा (आध्रः) सब ओर से धारण करता

(यंचित) जिस किसी का (मन्यमानः) जानने हारा (तुरश्चित् दुष्टों को दण्डदाता और (राजा सबका प्रकाशक है (यम जिस (भगम्) भजनीय स्वरूप को (चित् भी (भक्षीति) इस प्रकार सेवन करता हूँ और इसी प्रकार भगवान परमेश्वर सबको (आह उपदेश करता है कि तुम जो मैं सूर्यादि जगत का बनाने और धारण करने हारा हूँ उस मेरी उपासना को किया करो और मेरी आज्ञा में चला करो इससे वयम् हम लोग उसकी हुवेम) स्तुति करते हैं ॥२॥

ओ३म् भग प्रणेतर्भग सत्य राधो
भगेमाँ धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्रणो जनय गोभिरश्वैर्भग
प्रनृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ ३ ॥ यजु ३४।३६

ऐश्वर्य रूप हे अन्तर प्रेरक, उत्तम धन के दाता हो
सब विध रक्षा करो हमारी, उत्तम ज्ञान प्रदाता हो।
गो अश्वादिक प्रिय पशुओं से प्रभु हमको समृद्ध करो
देव तुल्य तुम हमें बना दो, सबका जीवन सिद्ध करो।
सुप्रभात की वेला में हम, मस्तक तुम्हें नवाते हैं
सकल ज्ञान उत्तम श्रद्धा से, मुदमय तुम्हें बुलाते हैं ॥

अर्थ :—

हे भग भजनीय स्वरूप (प्रणेतः) सबके उत्पादक सत्याचार में प्रेरक भग ऐश्वर्य प्रद सत्यराधः) सत्य धन के देने हारे (भग) सत्याचरण करने हारो को ऐश्वर्यदाता आप परमेश्वर्य (नः) हमको

(इमाम्) इस (धियम्) प्रजा को (ददत्) दीजिए। और उसके दान से (उदव) रक्षा कीजिए। हे भग) आप (गोभिः) गाय आदि और (अश्वैः घोड़े आदि उत्तम पशुओं के योग से राज्यश्री को नः) हमारे लिये (प्रजनय) प्रकट कीजिए। हे भग) आपकी कृपा से हम लोग (नृवन्तः बहुत वीर मनुष्य वाले (प्रस्याम) अच्छे प्रकार होवे।

ओ३म् उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत
प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं
देवानां सुमतौस्याम । ४ । यजु· ३४।३७

पुरुषार्थ हमारा दया आपकी
हे प्रभु अब स्वीकार करो,
परम विभव का कर वित्तान अब
जीवन का उद्धार करो।
उदित सूर्य - उत्थान निरन्तर,
देवों की शुभ मति पाऊँ।
सब विधि दिव्य गुणो को पाकर
निशि दिन तेरे गुण गाऊँ।
सु-प्रभात की बेला में हम
मस्तक तुम्हें नवाते हैं।
सकल ज्ञान उत्तम श्रद्धा से
मुदमय तुम्हें बुलाते हैं।

अर्थः—

हे भगवान ! आप की कृपा से (उत्त) और अपने पुरुषार्थ से हम लोग (इदानीम्) इसी समय (प्रपित्वे) प्रकर्षता उत्तमता की प्राप्ति में (उत्त) और (अहनाम) इन दिनों के मध्ये) मध्य में (भगवन्तः) ऐश्वर्य युक्त और शक्तिमान. (स्याम) होवें (उत) और हे (मघवन्) परमपूजित असंख्य धन देने वाले (सूर्यस्य) सूर्य लोक के (उदिता) उदय में देवानाम् पूर्ण विद्वान धार्मिक आप आप्त लोग की (सुमतौ) अच्छी उत्तम् प्रजा (उत) और सुमति में (वयम् हम लोग (स्याम) सदा प्रवृत रहें ॥४॥

ओ३म् भग एव भगवाँ अस्तु
देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तंत्वा भग सर्व इज्जो हवीति
सनो भगः पुर एता भवेह ॥५॥ यजु ३४।३८

सकल विभव के स्वामी हो तुम,
वैभव शील कहाते हो।
शुद्ध हृदय से जो भी ध्यावे,
उसे समर्थ बनाते हो।
इस विध सारा विश्व तुम्हें ही
विविध रूप में ध्याता है।
तुम ही नेता बनो हमारे
शान्ति सुधा बरसाता है।

सुप्रभात की वेला में हम
मस्तक तुम्हें नवाते हैं।
सकल ज्ञान उत्तम श्रद्धा से
मुदमय तुम्हें बुलाते हैं।

अर्थ :—

हे (भग) सकलैश्वर्य सम्पन्न जगदीश्वर जिससे (तम्) उस (त्वा) आपकी (सर्वः) सब सज्जन (इज्जोहवीति) निश्चय करके प्रशंसा करते है। (सः) सो आप हे (भग) ऐश्वर्य प्रद (इह) इस संसार और (नः) हमारे गृहाश्रम में (पुरएता) अग्रगामी और आगे आगे सत्य कामों में बढ़ाने हारे (भव) कीजिए और जिससे (भग) (एव) सम्पूर्ण ऐश्वर्य युक्त और समस्त ऐश्वर्य के दाता के होने से आप ही हमारे भगवान पूजनीय देव (अस्तु) हूजिए (तेन) उसी हेतु से (देवाः वयम्) हम विद्वान लोग (भगवन्तः) सकलैश्वय सम्पन्न हो के सब संसार के उपकार में तन मन धन से प्रवृत स्याम होवें ॥५॥

सन्ध्योपासना विधि

गायत्री मंत्र पढ़कर शिखा बाँधें। दाहिने हाथ में जल लेकर वह मंत्र पढ़कर तीन आचमन करें।

आचमन मंत्र

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टय आपो
भवन्तु पीतये। शंयोरभि स्रवन्तु नः ॥यजु ३६।१२

दिव्य गुणों से युक्त हैं, जो
व्यापता भगवान है।
इष्ट फल को प्राप्ति का
जिससे मिला वरदान है।
शान्ति का दाता वही जो
शम् सदा करता रहे।
सुखद वर्षा हो चतुर्दिक
शम् सदा भरता रहे।

भावार्थ :—

सबका प्रकाशक सबको आनन्द देने वाला और सर्वव्यापक ईश्वर, मनोवाँछित आनन्द के लिए और पूर्ण आनन्द के लिए हमको कल्याण कारो हो अर्थात हमारा कल्याण करे। वही परमेश्वर हम पर सुख और कल्याण की सब ओर से वृष्टि करे।

अथेन्द्रियस्पर्श मन्त्राः

वायीं हथेली में जल लेकर निम्न मन्त्रों से दाहिने हाथ की मध्यमा और अनामिका अंगुलियों से पहिले दाहिने और पश्चात वायें पार्श्व में इन्द्रिय स्पर्श करें साथ ही इन इन्द्रियों में प्रभु जग· दीश की कृपा और कारीगरी के अनुभव करता हुआ प्रार्थना करें कि प्रभु कृपा से हमारी इन्द्रियां पवित्र और बलवान रहें तथा हमारे यशोबल की वृद्धि एवं रक्षा हो।

अथेन्द्रिय स्पर्श

ओ३म् वाक् वाक्।	इससे मुख के दाहिने बायें पार्श्व
ओ३म् प्राणः प्राणः।	इससे नासिका के दाहिने बायें पार्श्व
ओ३म् चक्षुश्चक्षः।	इससे दाहिने बायें नेत्रों का
ओ३म् श्रोत्रं श्रोत्रम्।	इससे दाहिने बायें कानों का।
ओ३म् नाभिः।	इससे नाभि का
ओ३म् हृदयम्।	इससे हृदय का
ओ३म् कण्ठः।	इससे कण्ठ का
ओ३म् शिरः।	इससे सिर का
ओ३म् बाहुभ्याम् यशोबलम्।	इससे दाहिने बायें भुजा के स्कन्ध का।
ओ३म करतल करपृष्ठे।	इससे हाथ की हथेली और पीठ का स्पर्श करें। तैत्ती० १०, १७

माधुर्य से भरी हो, यश युक्ति कीर्ति वाणी
बलवान प्राण मेरे, होवे शतायु प्राणी।
आंखे हो सूक्ष्मदर्शी सुखदां पुनीति दृष्टि।
कानों से सुश्रुति हो, गुञ्जित सुशब्द सृष्टि
जनिता सुशक्तिशाली, नाभि सदा हमारी।
पावन हृदय हमारा, बलवान और उदारी
नीरोग कण्ठ सबका, कोमल मधुर सुभाषी
मेधावी स्वस्थ शिर हो, केशों की हो सुराशि
बलवान और यशस्वी, दोनों भुजायें भारी।
हाथों के दो तले भी, दानी सुयश भण्डारी।

मार्जन मन्त्रः

मध्यमा और अनामिका अंगुलियों से इन्द्रियों पर जल छिड़के।

ओ३म् भूः पुनातु शिरसि।	इससे सिर पर
ओ३म् भुवः पुनातु नेत्रयोः।	इससे नेत्र पर
ओ३म् स्वः पुनातु कण्ठे।	इससे कण्ठ पर
ओ३म् महः पुनातु हृदये।	इससे हृदय पर
ओ३म् जनः पुनातु नाभ्याम।	इससे नाभि पर
ओ३म् तपः पुनातु पादयोः।	इससे पैरों पर
ओ३म् सत्यम पुनातु पुनः शिरसि।	इससे सिर पर
ओ३म् खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र।	इससे सब अंगों पर।

तै० १०/१७

प्राणों को देनेवाले, शिर को पवित्र कर दो
दुःखों को हरने वाले, आँखों में ज्योति भर दो
पावन हो कण्ठ मेरा, सुख के सुकाम भावन
होवें महान स्वामिन्, सबके हृदय सुपावन
प्यारे जनक प्रभो हो नाभि पुनीति जननी
पैरो में हो सबलता, सुफला सुनीति सरणी
हे सत्यरूप भगवान; पावन ये सबके शिर हो
हे ब्रह्मरूप स्वामिन पावन ये अंग फिर हों।

प्राणायाम् मंत्रः

निम्न मन्त्रों का अर्थ सहित मन में उच्चारण करते हुये सत्यार्थ प्रकाश में प्रदर्शित विधि के अनुसार कम से कम तीन प्राणायाम करें।

ओ३म् भूः। ओ३म् भुवः। ओ३म् स्वः।

ओ३म् महः। ओ३म् जनः। ओ३म् तपः।

ओ३म् सत्यम्। ॥तैत्ति० १०।२७

प्राणेश प्राणदाता, दश प्राण पुष्ट कर दो
दुख दूर हो सभी के ऐसा वरिष्ट वर दो
सुख के अथाह सागर, सुख से सभी को भर दो
महिमा स्वरूप भगवन, सब विधि महान कर दो
तुम हो जनक सभी के, हम हो जनक दुलारे।
होवे महा तपस्वी, कष्टों के सहने हारे।
हे सत्य रूप स्वामिन ! प्राणों में शक्ति भर दो
हो सत्य के प्रकाशक, भावों में भक्ति भर दो।

भावार्थ—हे सर्व जगदुत्पादक, प्राणप्रिय परमेश्वर ! आप हमारे सिर को पवित्र कीजिए। हे दुख विनाशक ज्ञानोत्पादक प्रभो ! हमारे नेत्र को पवित्र कीजिए। हे सुख स्वरूप जगदीश ! हमारे कण्ठ को पवित्र कीजिए। हे परम पूज्य महान प्रभो ! हमारे हृदय को पवित्र कीजिए हे सर्वोत्पादक पिता हमारी नाभि में पवित्रता हो। हे तपः स्वरूप ज्ञान स्वरूप रुद्र हमारे पांव पवित्र हों। हे सत्य स्वरूप भगवन् ! हमारे शिर को पुनः पवित्र कर दो हे सर्व व्यापक विभो हमें सर्वत्र पवित्र कीजिये।

अथाघमर्षण मन्त्राः

ओ३म् ऋतञ्च सत्यञ्चाभिद्धात्तपसोऽध्यजायत ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥१॥

हे सृष्टि कर्त्ता भगवन् रचना महान तेरी
वेदों के ज्ञान दाता, गुंजित हो सत्य भेरी
सामर्थ्य से ही निज के रचता विशाल सृष्टि
फिर रात भी बनायी, सागर-विशाल वृष्टि।

भावार्थ—

उस धाता परम प्रभु के सब ओर से प्रकाशमान ज्ञानमय तप से सर्व विद्याधिकरण वेद शास्त्र एवं निरपेक्ष सत्य तथा त्रिगुणमय प्रकृत्यात्मक अव्यक्त सापेक्ष्य सत्य पैदा हुये। प्रभु के उसी सामर्थ्य से परवर्ती रात्रि और उसी से आलोडित समुद्र उत्पन्न हुआ।

ओ३म समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत। अहो रात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥२॥

रचकर समुद्र पहले, दिन रात फिर बनाये
वश में सभी को रखकर संवत यहाँ सृजाये
तुम ही प्रभो नियामक शक्ति अपार तेरी
पापों से बच सके हम पाकर के गोद तेरी

प्रभु के सामर्थ्य से समुद्रार्णव से, संवत्सर उत्पन्न हुआ। विश्व को सहजतया वश में रखने वाले प्रभु ने दिन रात बनाये।

सूर्याचन्द्रमसौधाता यथाँ पूर्वमकल्पयत दिवञ्च
पृथिवी ञ्चान्तरिक्ष मथो स्वः ॥३॥ ऋ० १०।१९०।३

पूर्व कल्प में यथा रची थी
तुमने प्रभु सृष्टि सारी
द्यौ भूः अन्तरिक्ष के स्वामी
हो तुम सूर्य चन्द्र धारी
स्वर्ग बना कर भू को
तुमने सूर्य चाँद रचाये
सदा एक सी रचना करते,
अद्भुत साज सजाये
अनायास ही तव चरणों में
यह मस्तक है झुक जाता
सुख स्वरूप और सुख के दाता
हो तुम जग भर के त्राता ॥

भावार्थ—

समस्त संसार का धारण और पोषण करने वाले परमात्मा ने सूर्य चन्द्रमा द्यूलोक, पृथ्वी, अन्तरिक्ष और अन्य लोकों को उसी प्रकार बनाया था। जिस प्रकार पूर्व सृष्टि में बनाया था।

शन्नोदेवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये शंयोरभि स्रवन्तु नः। यजु ३६।१२

हे दिव्य रूप देवी आनन्द इष्ट हेतु।
अमृत समान जल हो, कल्याण शान्ति सेतु।
चारों तरफ से वृष्टि कल्याण युक्त होवे।
शान्ति की कामना से सन्ताप आप धोवे।

अथमनसापरिक्रमा मंत्राः

ओ३म् प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भेदध्मः ॥१॥ अथर्व ३।२७।१

प्राची पति है अग्नि किरणें प्रतीक जिसकी
आदित्य वाण जिसके मारक अनीक जिसकी
उनको प्रणाम मेरा पति रूप को नमस्ते
रक्षक को सिर नवाऊँ शर को भी हो नमस्ते
श्रद्धा से नत है मस्तक सबको पुनः नमस्ते
जो द्वेष हो परस्पर तेरे समक्ष धरते।

अर्थ—पूर्व दिशा में हमारी प्रगति की दिशा का अधिपति अग्रणी स्वप्रकाश स्वरूप भगवान हैं। बन्धन हीन प्रभु हमारे रक्षक हैं आदित्य विद्वान या प्राण वाणों की तरह हमारे सहायक या

मार्ग दर्शक हैं। उस अधिपति को हमारा नमस्कार हो। उस रक्षक को नमस्कार, इच्छापूर्ति में सहायक आदित्यों को नमस्कार इन सबको नमस्कार हो। जो हमसे द्वेष करते हैं और जिनसे हम द्वेष करते हैं उस द्वेष भाव को आप के न्याय रूप दाढ़ में रखते हैं कि जिससे हमलोग परस्पर मित्र भाव से रह सकें।

दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चि राजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥२॥ अथर्व ३।२७।२

दक्षिण का इन्द्र स्वामी शर हैं पितर सुज्ञानी
तिर्यक् व वृश्चिकों से रक्षा करे सुमानी
उनको प्रणाम मेरा पति रूप को नमस्ते
रक्षक को सिर नवाऊँ शर को भी हो नमस्ते
श्रद्धा से नत है मस्तक सबको पुनः नमस्ते
जो द्वेष हो परस्पर तेरे समक्ष धरते।

अर्थ—हमारी दक्षिण दिशा का हमारी दक्षता, ऐश्वर्य पराक्रम का अधिपति परमऐश्र्यवान प्रभु है। कुटिलता से रक्षा करने वाला जगदीश्वर हमारा रक्षक है। आप्त विद्वान, पितर हमारे सहायक हैं उस अधपतिको नमस्कार, उस रक्षक को नमस्कार हमारे सहायक आप्त विद्वानों और पितरों को नमस्कार इन सबको नमस्कार हो। जो हमसे द्वेष करते हैं और जिनसे हम द्वेष करते हैं उस द्वेष

भाव को आपके न्याय रूप दाढ में रखते हैं जिससे हमलोग परस्पर मित्र भाव से रह सके।

ओ३म् प्रतीची दिग्वरुणोधिपतिः पृदाकु रक्षितान्न मिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो ३ स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्म स्तं वो जम्भे दध्मः। अथर्व ३।२७।३

वरुण बने पश्चिम के स्वामी भुजंगादि से करते त्राण,
अन्न बाण हैं जिनके वे भरते हैं सबमें नूतन प्राण।
उनको प्रणाम मेरा पति रूप को नमस्ते,
रक्षक को सिर नवाऊँ शर को भी हो नमस्ते।
श्रद्धा से नत है मस्तक सबको पुनः नमस्ते,
जो द्वेष हो परस्पर तेरे समक्ष धरते।

अर्थ—विश्राम और पराङ् मुखता की पश्चिम दिशा है। सर्वश्रेष्ठ प्रभु वरुण उसका स्वामी है। पापों से बचाने वाला और उत्साह देने वाला जगदीश्वर हमारा रक्षक है अन्न आदि भोग्य हमारे सहायक हैं। (आगे उपर्युक्त लिखित मंत्र अर्थ देखें।)

उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनि रिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो ३ स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ अथर्व ३।२७।४

सोम सदा स्वामी उत्तर के शान्ति सुधा बरसाते हैं
विद्युत शर को कर धारण वे सोम सुधा सरसाते हैं।
उनको प्रणाम मेरा पति रूप को नमस्ते.
रक्षक को सिर नवाऊँ शर को भी हो नमस्ते।
श्रद्धा से नत है मस्तक सबको पुनः नमस्ते,
जो द्वेष हो परस्पर तेरे समक्ष धरते।

अर्थ—उत्तर की हमारी दिशा के स्वामी शान्त प्रभु सोम हैं। दुर्भावनाओं को दूर करने वाले जगदीश्वर रक्षक हैं। तेजस्वी विद्युत हमारी सहायक है। अधिपति को नमस्कार, रक्षक को नमस्कार, सहायकों को नमस्कार जो हमसे द्वेष करते हैं, जिनसे हम द्वेष करते हैं उसको हम आपके न्याय रूपी दाढ़ में रखते हैं जिससे कि हम मित्र भाव से रह सकें।

ध्रुवा दिग्विष्णु रधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो ३ स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भेदध्मः। अथर्व वेद ३।२७।५

विष्णु स्वामी नीचे के हैं वे वृक्ष लता पनपाते
वृक्ष बाण हैं जिनके सुन्दर पत्र पुष्प बरसाते
उनको प्रणाम मेरा पति रूप को नमस्ते
रक्षक को सिर नवाऊँ शर को भी हो नमस्ते
श्रद्धा से नत है मस्तक सबको पुनः नमस्ते
जो द्वेष हो परस्पर तेरे समक्ष धरते।

अर्थ—हमारी ध्रुवता की दिशा के स्वामी सर्व व्यापक भगवान विष्णु। सत्योपदेशक रक्षक और वृक्ष वनस्पति सहायक हैं उस अधिपति को नमस्कार, सहायकों को नमस्कार। जो हमसे द्वेष करते हैं, जिनसे हम द्वेष करते हैं उसको हम आपके न्याय रूपी दाढ़ में रखते हैं जिससे कि हम मित्र भाव से रह सकें।

उर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो ३ स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥

अथर्व का० ३।अ०६ सू२७।६

वृहस्पति ऊपर के स्वामी, परम ज्ञान के दाता हैं
वृष्टि विन्दु ही जिनके शर हैं श्रुति वाणी के गाता हैं
उनको प्रणाम मेरा, पति रूप को नमस्ते
रक्षक को सिर नवाऊँ शर को भी हो नमस्ते
श्रद्धा से नत है मस्तक सबको पुनः नमस्ते
जो द्वेष हो परस्पर तेरे समक्ष धरते।

अर्थ—हमारे जीवन की उर्ध्व दिशा के स्वामी भगवान वृहस्पति हैं। सात्विक शुभ्र रक्षक हैं। वर्षा हमारी सहायक है उस अधिपति को नमस्कार, रक्षक को नमस्कार, सहायकों को नमस्कार, जो

हमसे द्वेष करते हैं, जिनसे हम द्वेष करते हैं उसको हम आपके न्याय रूपी दाढ़ में रखते हैं जिससे की हम मित्र भाव से रह सकें।

अथोपस्थान मन्त्राः

ओ३म् उद् वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योति रुत्तमम् ॥१॥यजु०अ०३५।मं१४।

प्रलय रात्रि से पहले भी जो उत्तम ज्योतिष्मान रहे।
देवों का भी देव जिसे श्रति सुख स्वरूप भगवान कहे।
तेज पुंज हो स्वयं प्रकाशक, तेरा ही गुणगान करें।
तुम हो रक्षक प्रभु हमारे, तेरा ही हम ध्यान धरें॥

अर्थ—हे प्रभो ! आप विश्व के आत्मा, देवों के देव उत्कृष्ट ज्योतिस्वरूप हैं। आपके सानिध्य में हम अन्धकार से उत्कृष्ट उत्कृष्टतर और उत्कृष्टतम् आपकी स्वः स्वरूप ज्योति को प्राप्त करें।

उदुत्यं जात वेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥२॥यजु अ०३३।मं३१॥

वेद ज्ञान के दाता प्रभु ही ज्ञान रश्मि छिटकाते हैं।
वेद श्रुति के द्वारा उसके ऋषि मुनि भी गुण गाते हैं।
विश्व ज्ञान के हेतु महाप्रभु हम तुमको अपनाते हैं।
सूर्य रूप तुम आत्म प्रकाशक इसी लिए हम ध्याते हैं।

अर्थ—वेदों को उत्पन्न करने वाले अभिसरणीय देव परम प्रभु के पास उसकी पताकायें सम्पूर्ण विश्व के दर्शन के लिए साक्षात्कार के लिये उसके पास पहुँचा देती है।

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावा पृथिवीऽअन्तरिक्षँ सूर्य आत्मा जगतस्तथुषश्च स्वाह।यजु ७।४२

द्यौ, पृथिवी और अन्तरिक्ष का चर का और अचर का स्वामी
प्राण चक्षुओं आत्मदेवता, धर्ता सूर्य अनल जल नामी
आत्म ज्ञान के दाता तुम हो करो प्रकाशित मेरे मन को
मनुज हृदय के स्वामी हो तुम करो विमल सुन्दर तनको

अर्थ – जो सूर्य भगवान जड़ जगत और प्राणियो का आत्मा है, सबमें व्याप्त है जो द्यु लोक पृथिवी और अन्तरिक्ष का धारण और रक्षण करने वाला में, जो मित्र-वरुण-अग्नि का प्रकाशक, प्राण, अपान और अग्नि का प्रकाशक जो देवो का दिव्य गुण, विशिष्टो का दुख नाशक परम उत्तम बल है। वह परमेश्वर हमारे हृदयों में यथावत प्रकाशित रहे।

तच्चक्षुर्देव हितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत। पश्येम शरदः शतम् जीवेम शरदः शतँ श्रृणुयाम शरदः शतम प्रब्रवाम् शरदः शतमदीना स्याम् शरदः शतम् भूयश्च शरदः शतात्।

जो देवों का हित कर्त्ता और जगत का द्रष्टा है
तीनों कालो का जो धर्त्ता और जगत का स्रष्टा है
शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव ! हम तेरा ही गुण गान करें
देखें शत वर्षों आँखे वस. तेरा ही हम ध्यान धरें
दो आशीष प्रभो तुम मुझको शत वर्षों का जीवन पाऊँ
शत-शत वर्ष प्रभो कानों से सुश्रुति में सुनता जाऊँ
शत शत वर्ष प्रभो मैं मुख से जग को वैदिक ज्ञान सुनाऊँ
शत वर्षों तक रहूँ निरोगी सत्य प्रिय नहीं दीन कहाऊँ
दो वरदान प्रभो तुम मुझको शत वर्षों में पा न सकूं
तो मैं अपने इस आयुष को और अधिक भी बढ़ा सकूँ ।

अर्थ—जो ब्रह्म सबका द्रष्टा धार्मिक विद्वानों का परम हित कारक तथा सृष्टि पूर्व पश्चात और मध्य सत्य रूप से वर्तमान रहता है उसी ब्रह्म को हम लोग सौ वर्ष पर्यन्त देखे, जीवें सुनें, उसी का उपदेश करें उसकी कृपा से किसी के अधीन न रहें उसकी आज्ञा पालन और कृपा से सौ वर्षों से उपरान्त भी हमलोग देखे, जीवें, सुने, सुनावें और दीनता से रहित रहें ।

अथ गुरुमन्त्रः

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।। यजु अ० ३।३५

"भूः" जो है प्राणो का दाता 'भुवः' दुखों का हर्ता है
जो है 'स्व' सुखो का दाता, 'सवितः' सकल सृष्टि कर्त्ता है
'वरेण्यं' जो है श्रेष्ठ देवता "भर्गः" शुद्ध स्वरूप रहे
'देवस्य' जो स्वयं प्रकाशक "धीमहि" गुण ध्यानस्थ कहे
'यः' जो पिता 'न' हम सबों की 'धियः" बुद्धि सुकर्म को
अपनी कृपा से 'प्रचोदयात" प्रेरित करे शुभ धर्म को।

अर्थ—हे सर्व रक्षक प्रभो! आप प्राणों के भी प्राण दुख विनाशक सुखकारक हैं। हम आपके पवित्र वरणीय भर्ग को धारण करें आप हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग में प्रेरित करें।

हे ईश्वर दयानिधे भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादि कर्मणा धर्मार्थ काम मोक्षाणाम् सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः ॥

धर्म के हो हम धनी हम अर्थ के दानी बने
कामनाये पूर्ण हो हम मोक्ष के ज्ञानी बनें।
हे दया-सागर प्रभो! समृद्ध हमको कीजिए।
जप उपासना कर्म से प्रभु सिद्धि सत्वर दीजिए।

हे दया के भण्डार परमेश्वर! आपकी कृपा से जप उपासना आदि कर्मों से हमें धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि शीघ्र प्राप्त हो।

ओ३म नमः शम्भवाय च मयोभवाय च। नमः शङ्कराय च मयस्कराय च। नमः शिवाय च शिवतराय च।'

यजु अ० १६ ।मं४१

सर्व सुखकारी प्रभो ! मैं कर रहा तुमको प्रणाम।
सुख स्वरूप महाविभो मैं कर रहा तुमको प्रणाम॥
शान्ति कर्त्ता हे प्रभो मैं कर रहा तुमको प्रणाम।
सर्व मंगल हे विभो मैं कर रहा तुमको प्रणाम॥
सकल मंगल कर प्रभो मैं कर रहा तुमको प्रणाम।
नित्य कल्याणी विभो मैं कर रहा तुमको प्रणाम॥

ओ३म्

।। प्रार्थनोपासना मंत्रा: ।।

अथेश्वर स्तुति

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद् भद्रं तन्न आसुव।

हे देव सवितर विश्वकर्त्ता शुद्ध रूप महान है।
दुरितानि दुर्गुण दुर्व्यसन से मुक्त करता त्राण है।
आचरण दो शुद्ध मुझमें भद्र भावोद्गान है।
पापहर्त्ता शुद्धकर्त्ता जो सुखद भगवान है।

हे (सवित) सकल जगत के उत्पत्ति कर्त्ता समग्र ऐश्वर्ययुक्त (देव) शुद्ध स्वरूप सब सुखो के दाता परमेश्वर ! आप कृपा करके (नः) हमारे (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण दुर्व्यसन और दुखों को (परा, सुव) दूर कर दीजिए (यत) जो (भद्रम) कल्याण कारक गुण कर्म स्वभाव और पदार्थ हैं (तत) वह सब हमको (आ, सुव) प्राप्त कीजिए।

हिरण्य गर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मैदेवाय हविषा विधेम।

वर्तमान जो प्रलय काल में प्राणी मात्र का स्वामी है।
सूर्य चन्द्र तारे अन्तर में सबका अन्तर्यामी है
द्यौ पृथ्वी और अन्तरिक्ष का आश्रय वह कहलाता है
कौन नियन्ता ? अर्चन किसका ? जो सुख रूप विधाता है

जो (हिरण्यगर्भ) स्व प्रकाश स्वरूप और जिसने प्रकाश करने हारे सूर्य चन्द्रमा आदि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये है जो (भूतस्य) उत्पन्न हुये सम्पूर्ण जगत का (जातः) प्रसिद्ध (पति) स्वामी (एकः) एक ही चेतन स्वरूप (आसीत) था जो (अग्रे) सब जगत के उत्पन्न होने से पूर्व (समवर्तत) वर्तमान था (सः) जो (इमाम) इस (पृथिवी) भूमि (उत) और (द्याम) सूर्यादि को (दाधार) धारण कर रहा है। हमलोग (कस्मै) सुख स्वरूप (देवाय) शुद्ध परमात्मा के लिए (हविषा) ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अतिप्रेम से विधेम) विशेष भक्ति किया करें।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम। यजु० २५।१३

आत्मज्ञान और बल का दाता, विश्व जिसे अपनाता है
देव प्रशंसा जिसकी करते, वही मरण का दाता है
जिसकी दया असीम से मिलता सबको जीवन दान है
कौन नियन्ता ? अर्चन ? किसका जो सुखमय महान है

(यः) जो (आत्मदा) आत्मज्ञान का दाता (बलदाः) शरीर आत्मा और समाज के बल का देने हारा (यस्य) जिसकी (विश्वे) सब देवा: विद्वान लोग (उपासते) उपासना करते हैं और (यस्य जिसका प्रशिषम) प्रत्यक्ष सत्य स्वरूप शासन और न्याय अर्थात शिक्षा को मानते हैं (यस्य) जिसका (छाया) आश्रय ही (अमृतम्) मोक्ष सुख दायक हैं (यस्य) जिसका न माना अर्थात भक्ति न करना ही (मृत्युः) मृत्यु आदि दुख का हेतु है हम लोग उस (कस्मै) सुख स्वरूप (देवाय) सकल ज्ञान के देने हारे परमात्मा की प्राप्ति के लिए (हविषा) आत्मा और अन्तःकरण से (विधेम) भक्ति अर्थात उसी की आज्ञा पालन करने में तत्पर रहें।

यः प्राणतो निमिषतो महित्वक इद्राजा जगतो बभूव। य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम।

महिमा से अनन्त जो अपनी वह विराट बन जाता है
चर और अचर सकल जगत का वह सम्राट कहाता है।
दोपाए चौपायों को प्रभु देता संतत प्राण है
कौन नियन्ता ? अर्चन किसका ? जो सुख रूप महान है

(यः) जो (प्राणतः) प्राण वाले और (निमिषतः) अप्राणिरूप (जगतः) जगत का (महित्वा) अपने अनन्त महिमा से ही एक (राजा) विराजमान राजा (बभूव) है (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) मनुष्यादि और (चतुष्पद) गो आदि प्राणियों के शरीर

की (ईश) रचना करता है हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकलेश्वर्य के देने हारे परमात्मा के लिए [हविषा] अपनी सकल उत्तम सामग्री से [विधेम] विशेष भक्ति करें।

ओ३म् ॥ येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्वः स्तभितं येन नाकः। यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥ यजु ३२।६

उग्र सूर्य पृथ्वी शशि तारे किया है जिसने भीतर धारण
वही मोक्ष सुख देने हारा, सभी दुखों का करे निवारण
खग चर जैसे सभी ग्रहों को घुमा रहा अन्तर्धान है
कौन नियन्ता ? अर्चन किसका ? जो सुख रूप महान है।

(येन) जिस परमात्मा ने (उग्र) तीक्ष्ण स्वभाव वाले (द्यौ) सूर्य आदि च) और (पृथिवी) भूमि को (दृढ़ा धारण और (येन) जिस ईश्वर ने (नाकः दुखरहित मोक्ष को धारण किया है (यः) जो (अन्तरिक्षो) आकाश में (रजसः) सब लोक लोकान्तरों को (विमान) विशेषमान युक्त अर्थात जैसे आकाश में पक्षी उड़ते है वैसे सब लोको का निर्माण करता और भ्रमण कराता है हम लोग उस (कस्मै) सुखदायक (देवाय) कामना करने योग्य पर ब्रह्म की प्राप्ति के लिए (हविषा) सब सामर्थ्य से (विधेम) विशेष भक्ति करें।

प्रजापते नत्वदेतान्यन्या विश्वा जातानिपरि ता बभूव यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोस्तुवयं स्याम पतयो रयीणाम ॥६॥

हे प्रजापति ! घट-घट व्यापक तुम बिन कौन रचे जग को
कभी तिरस्कृत नहिं करते हो, मनुज, कीट, पशु या खग को
भक्त कामना लेकर आये अभय पूर्ण वरदान है
हो ऐश्वर्य पति, धन, स्वामी, यही विनय भगवान है।

हे (प्रजापते) सब प्रजा के स्वामी परमात्मा ! (त्वत्) आपसे (अन्यः) भिन्न दूसरा कोई (ता) उन (एतानि) इन (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुये जड़ चेतनादिकों को (न) नहीं (परिबभूव) तिरस्कार करता है, अर्थात आप सर्वोपरि है (यत्कामाः) जिस-२ पदार्थ की कामना वाले हमलोग (ते) आपका (जुहुमः) आश्रय लेवे और वांच्छा करें (तत्) उस-उस की कामना (नः) हमारी सिद्धि (अस्तु) होवे जिससे (वयम्) हमलोग (रयीणाम्) धनैश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवे ॥६॥

स नो बन्धुर्जनिता सविधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्न ध्यैरयन्त ॥७॥

है वह सुख दायक भ्राता, सकल जगत का धाता है
नाम, स्थान, भुवन जन्मो, का अखिल विश्व का ज्ञाता है
देव मुक्त हो जहाँ विचरते, मोक्ष परम कल्याण है
कौन गुरु और सखा हमारा ? सुखद रूप भगवान है।

हे मनुष्यो ! (सः) वह परमात्मा (नः) अपने लोगों का (बन्धुः) भ्राता के समान सुख दायक (जनिता) सकल जगत का उत्पादक

(सः) वह (विधाता) सब कामों का पूर्ण करने हारा (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) लोकमात्र और (धामानि) नाम स्थान जन्मो को (वेद) जानता है। और (यत्र) जिस (तृतीये) सांसारिक सुख-दुख से रहित नित्यानन्द युक्त (धामन) मोक्ष स्वरूप धारण करने हारे परमात्मा में (अमृतम्) मोक्ष को (आनशानाः) प्राप्त होके (देवाः) विद्वान लोक (अध्यैरयन्त) स्वेच्छापूर्वक विचरते है वही परमात्मा अपना गुरु आचार्य राजा और न्यायाधीश है, अपने लोग मिलकर सदा उसकी भक्ति किया करें।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान। युयोध्यस्मज्जुहुराण मेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥८॥

हे अग्ने ज्योतिर्मय स्वामी, हमें सुपथ पर सदा बढ़ाओ
हम हो धनी सुसम्पत्त कामी सदा ज्ञान के शिखर-चढ़ाओ
पाप कुटिल दुष्कर्मों से यह चिता रहा धीमान है
करे प्रार्थना हम सब उसकी जो सुख रूप महान है।

हे (अग्ने) स्व प्रकाश ज्ञान स्वरूप सब जगत के प्रकाश करने हारे (देव) सकल सुख दाता परमेश्वर ! आप जिससे (विद्वान सम्पूण विद्यायुक्त हैं कृपा करके (अस्मान) हमलोगों को (राये) विज्ञान व राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (सुपथा) अच्छे धर्म युक्त आप्तलोगों के उत्तम मार्ग से (विश्वानि सम्पूर्ण (वयुनानि) प्रज्ञान और उत्तम कर्म (नय) प्राप्त कराइये और (अस्मत) हमसे

(जुहुराणम्) कुटिलता युक्त (एनः) पाप रूप कर्म को (युयोधि) दूर कीजिए। इस कारण हम लोग (ते) आपकी (भूयिष्ठाम्) बहुत प्रकार की स्तुति रूप (नमउक्ति) नम्रता पूर्वक प्रशंसा (विधेम) सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें।

॥ इति स्तुति प्रार्थनोपासना प्रकरणम् ॥

'ओ३म् भूर्भुवः स्वः' ॥ गोभिल गृह्य सूत्र ।१।१।११॥

परमात्मा (भूः) प्राणस्वरूप (भूवः)
दुखों को दूर करने वाला और (स्वः) सुख स्वरूप है।

उपरोक्त मंत्र से दीपक तत्पश्चात चमचा में कपूर वा कपास की बत्ती रखकर अग्नि प्रज्जवलित करें।

निम्न मंत्र को बोलकर कुण्ड के मध्य में अग्नि स्थापित करें।

ओ३म् भूर्भुः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवींवरिम्णा तस्यास्ते पृथिवी देव यजनि पृष्ठेऽअग्निमन्नादमन्ना द्याया दधे ।यजु ३।५॥

द्यू लोक सी मण्डित मही को आज हम हैं कर रहे
सूर्य सी ज्योतिर जलाने, आज पावक धर रहे
देव यजनी इस मही को आज सुरभित कर रहे
अन्न औषध घृत जलाकर व्यास जन की हर रहे
प्राणदाता दुख हर्ता इष्ट सुख फल दीजिए
अन्न-औषध से धरा को समृद्ध फिर कर दीजिए।

वह परमात्मा (भूः भुवः स्वः) पृथ्वी अन्तरिक्ष और स्वर्ग तीनों लोकों में विद्यमान है। वह परमात्मा (भूम्ना) अपनी चमक से (योद्भवः) आकाश की तरह और (वरिम्णा) महिमा से पृथ्वी के समान (देवयजनि पृथ्वी) जिस पर देव लोग नित्य यज्ञ करते हैं ऐसी पृथ्वी (तस्याः) उसे (ते) तेरी (पृष्ठे) पीठ पर (अन्नाद्याय) भक्षण योग्य अन्न की प्राप्ति के लिए अन्नाद्या) अन्नो के भक्षण करने वाले (अग्निः) अग्नि को [आदधे] स्थापित करता हूँ।

इस मंत्र से छोटी-छोटी लकड़ियाँ रख कर अग्नि को प्रदीप्त करें।

ओ३म् उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहित्वमिष्टा पूर्ते सँ सृजेथा मयंच अस्मिन् सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत। यजु० १५।५४।

हे अग्ने ज्योतिर्मय स्वामी ज्ञान ज्योति से भूषित कर दो
जो हो पूत कामना सबकी पितृ भाव से पूरित कर दो
भू पर जो यजमान देवगण स्नेह भाव से सदा रहे
इसी प्रेम से यज्ञ अग्नि को किया प्रज्वलित सदा करें।

(अग्ने) हे अग्नि तू (उद्बुध्यस्व) प्रदीप्त हो (प्रतिजागृति) खूब जागृति हो (त्वं) तू (च) और (अयं) यह यजमान (इष्टापूर्ते) इष्ट यज्ञादि और (पूर्त) कुआँ और धर्मशाला पाठशाला आदि बनवाने के शुभ कार्यों को (संसृजेथां) मिलकर सम्पादन करो। (अस्मिन) इस (उत्तरस्मिन) श्रेष्ठ (सधस्थे) मिलकर

बैठने के स्थान (अधि) पर (विश्वे देवा:) सब विद्वान लोग [च] और [यजमानः] यजमान [सीदत] बैठे।

समिदानधान मन्त्र—एक-एक समिधा को घृत में भिगो कर निम्न मंत्रों से एक-एक समिधा की आहुति दें।

ओ३म् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेने ध्वस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्म वर्चसे नानाद्येन समेधय स्वाहा। इदमग्नये जात वेदसे इदं न मम।

आश्वालायन गृह सूत्र १।१०।१२

व्याप्त अग्नि जो वस्तु-वस्तु में आधार काष्ठ कहलाती है
पाकर सुन्दर भेंट काष्ठ की, चण्ड रूप हो जाती है
सुख सन्तान हमें मिल जाये पशु धन भी बढ़ता जाये
इसी अग्नि से हे प्रभु जग में अन्न-पुष्प नित सरसाये
शुद्ध भाव से स्वाहा कह कर अग्नि रूप को अर्पित करते
स्वार्थ भाव से ऊपर उठ कर प्रभु चरणों में सब कुछ धरते।

हे [जात वेदसः] प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान, अग्ने ! [अयं] यह [इद्म] ईंधन [ते] तेरी [आत्मा] जान है [तेन] इसके द्वारा [इध्यस्व] प्रदीप्त हो [च] और [वर्धस्व] बढ़ [इह]निश्चय करके [अस्मान] हमको [वर्धय] बढ़ा और [प्रजया बाल बच्चो से [पशुभिः] पशुओं से (ब्रह्म वर्चसेन) ब्रह्मतेज से और (अन्नाद्ये) खाने योग्य अन्न आदि पदार्थों से (समृएधय) समृद्ध कर (स्वाहा) हमारा यह कथन सत्य और शोभा युक्त है (इदं) यह हवि (जातवेद से) सब पदार्थों

में विद्यमान (अग्ने) अग्नि के लिए है। इदं यह न मम ; मेरे लिए नहीं।

[इन दो दूसरे और तीसरे मन्त्रों को पढ़कर एक समिधा प्रदान करें।]

ओ३म् समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् आस्मिन् हव्या जुहोतनस्वाहा। इदमग्नये इदन्न मम ॥

ओ सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जात वेदसे स्वाहा। इदं अग्नये जात वेदसे इदन्नम।

अतिथि तुल्य समिधा घृत से मैं दीप्त अग्नि करता जाऊँ
कर सेवन इस हवा अग्नि का सुख सौरभ भरता जाऊँ
परम पुनीत यज्ञ को वस्तु-वस्तु जो व्याप्त रही
तीव्र करूँ घृत का सिंचन कर हरती जग का ताप रही
शुद्ध भाव से स्वाहा कर अग्नि रूप को अर्पित करते
स्वार्थ भाव से ऊपर उठ कर प्रभु चरणों में सब कुछ धरते।

२) [समिधा] ईंधन से और [घृतैः] घी से (अग्नि) अग्नि को (बोधयत) चेताओं और (अतिथिम्) अतिथि की तरह उसकी (दुवस्यत) पूजा करो (अस्मिन) इस अग्नि में (हव्या) हवन सामग्री की (आजुहोतम) आहुतियाँ दः (इदमग्नेइदनमम) यह अग्नि के लिए है मेरे लिए नहीं।

(३) (सुसमिधाय) अच्छी तरह प्रदीप्त (शोचिपे) कांतिमान (जात वेद से) सब पदार्थों में विद्यमान (अग्नेय) अग्नि के लिए

(तीव्र) तपाया हुआ (घृत) घी की (जुहोतन) आहुति दो (इदं अग्नेय इदन मम यह अग्नि के लिए है मेरे लिए नहीं।

इस चौथे मन्त्र से तीसरी समिधा देवें।

ओ३म् तन्त्वा समिद्भि रंगिरो घृतेन बर्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठय स्वाहा। इदमग्नये अंगिरसे इदन्नमम ॥

वहु पदार्थ देकर जगती को स्वयं महान बन जाते हैं
सबका छेदन - भेदन करके परम पुनीत कहाते हैं।
घृत समिधा हम पूत अग्नि को श्रद्धा सहित चढ़ाते हैं
तीन-तीन समिधा त्रिभुवन से त्रय-त्रय ताप मिटाते हैं।
शुद्ध भाव से स्वाहा कह कर अग्नि रुप को अर्पित करते
स्वार्थ भाव से ऊपर उठकर प्रभु चरणों में सब कुछ धरते।

(अंगिरः) सर्वत्र प्राप्त होने वाले (यविष्ठय) पदार्थों का संस्लेषण और विश्लेषण करने वाले (तम) इस प्रकार के (त्वा) तुझको (समिद्भिः) समिधाओं से और (घृतेन घी से (वर्द्धया मसि) हम बढ़ाते है (बृहत) वहुत (शोच) प्रकाशित होवो। (इदभग्नये इदंन मम) पहले की तरह।

पंच घृताहुतयः

ओ३म् अयन्त इध्म आत्मा जात वेदस्तेने ध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्म वर्चसे नान्नाद्येन समेधय स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे इदन्नमम।

॥ आश्वालायन गृह्य सूत्र ।१।१६।१२॥

(इसका अर्थ पहले कर दिया है)

इस मंत्र को ५ बार पढ़कर आहुति घी की दें।

तत्पश्चात लोटे में रखे जल को अंजलि में लेकर वेदी में पूर्व दिशा आदि में छिड़कावें।

ओ३म् अदिते अनुमन्यस्व ! इससे पूर्व कीओर
,, अनुमते अनुमन्यस्व । इससे पश्चिम की ओर
,, सरस्वत्यनुमन्यस्व । ,, उत्तर की ओर

गोभिलगृ० सूत्र प्र० १ ख ३ सक्त १३

ओ३म् देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञ पतिम् भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पति र्वाचं नः स्वदतु ॥ यजु० अ० ३० मंत्र १ ॥

इस मंत्र से वेदी के चारों ओर जल सिंचन करें।

हे देव सवितुर यज्ञ कर्ता विश्व में उत्पन्न हो
प्रेरणा पाकर चतुर्दिक यज्ञ ही सम्पन्न हो
शक्तिशाली वायु-जल-भू विभव से हमको भरें
यज्ञ से सद्बुद्धि पावे माधुर्य वाणी में धरें।

(देव) प्रकाश स्वरुप सविता सबके उत्पादक भगवन् आप (यज्ञं यज्ञ को (प्रसुव भली प्रकार आगे बढ़ाइये (यज्ञ पति) यज्ञ करने वाले यजमान को (भगाय ऐश्वर्य के लिए आगे बढ़ाइये (दिव्यः) तेजस्वी गन्धर्वः) देववाणीका धारक (केतपूः) बुद्धि को पवित्र करने वाला ईश्वर (नः हमारी (केतं) बुद्धि को (पुनातु) पवित्र करे वाचस्पति) वाणी का रक्षक (नः) हमारी (वाचम्) वाणी को स्वदतु) मीठा बनावे।

निम्न चार मंत्रों से घी की ४ आहुतियाँ दें।

ओ३म् अग्नये स्वाहा । इदमग्नये इदन्नमम ।

इससे उत्तर ओर की अग्नि में ....

अर्थ—(अग्नये) अग्निस्वरूप परमात्मा के लिए (स्वाहा) यह सुन्दर आहुति समर्पण हैं। (इद अग्नये इदं न मम) यह समर्पण अग्नि के लिए है मेरे लिये नहीं।

ओ३म् सोमाय स्वाहा। इदम् सोमाय इदन्नमम ।

इससे दक्षिण भाग की अग्नि में...............

॥ गोभि०गृ० १ । खं ८ सूक्त ३४ ॥

अर्थ—(सोमाय) सोमस्वरूप परमात्मा के लिए स्वाहा) यह सुन्दर आहुति समर्पण है (इदं सोमाय इदंनमम) यह समर्पण सोम के लिए है मेरे लिये नहीं।

निम्न दो मत्रों से वेदी के मध्य में आहुति देवें।

ओ३म् प्रजापतये स्वाहा-इदम् प्रजापतये इदन्नमम ।

यजु० १८ । २८

अर्थ—(प्रजापतये) प्रजापालक ईश्वर के लिये (स्वाहा) सुन्दर आहुति है। मेरे लिए नहीं।

ओ३म् इन्द्राय स्वाहा इदमिन्द्राय इदन्नमम ।

अर्थ—(इन्द्राय) परमऐश्वर्य के अधिष्ठाता ईश्वर के लिए (स्वाहा) सुन्दर आहुति है मेरे लिये नहीं।

अग्नि रूप प्रकाशमय हे, ज्ञान के दाता प्रभो

सुख शान्ति के भण्डार मेरे, सोमरूप महाविभो।

तुम प्रजापालक जनक तुम हो प्रजापति हे प्रभो।
ऐश्वर्य दाता, सुख प्रदाता इन्द्र रूप महाविभो।
शुद्ध भाव से स्वाहा कह कर अग्नि रूप को अर्पित करते
स्वार्थ भाव से ऊपर उठ कर, प्रभु चरणों में सब कुछ धरते

प्रातः काल होम के चार मन्त्र

इन मंत्रों से सामग्री दें।

ओ३म् सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा।
ओ३म् सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा।
ओ३म् ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा।
ओ३म् सजूर्देवेन सवित्रा सजूरूपसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा।

सूर्य समान हमारी ज्योति, सूर्य ज्योति के दाता हो।
सूरज सम है ज्ञान तुम्हारा, सकल ज्ञान उदगाता हो।
सूर्य ज्योति के रक्षक तुम हो ज्योति सूर्य विधाता हो।
सकल ज्ञान ऐश्वर्य प्रकाशक, सुख आनन्द प्रदाता हो।
शुद्ध भाव से स्वाहा कह कर अग्नि रूप को अर्पित करते
सकल ज्ञान उत्तम श्रद्धा से, प्रभु चरणो में सब कुछ धरते
दिव्य रूप में सेवनीय जो ज्योति रूप वह सविता है।
उषा काल में स्नेहसिक्त जो भानु सुकोमल हबिषा है।
बन ऐश्वर्या सदा जीवन में, उषाकाल सा आ जाए
सूर्य समान दिव्य वह ज्योति इस जीवन में छा जाये

शुद्ध भाव से स्वाहा कह कर अग्नि रूप को अर्पित करते
सकल ज्ञान उत्तम श्रद्धा से, प्रभु चरणों में सब कुछ धरते।

प्रातः काल आहुति के मन्त्र

१ अर्थ—(सूर्यः सर्व प्रेरक परमात्मा ज्योतिः) प्रकाशमय है जैसे कि (ज्योतिः यह प्रकाश का मंडल (सूर्य) यह सूर्य लोक है।

२ (सूर्यः) सबका सम्पादक ईश्वर (वर्चः) कांतिमय है वह ज्योतिः सब ज्योति जो संसार में दिखाई देती है वह (वर्चः) उसी की कान्ति है।

३ (ज्योतिः) सबके नेत्र की ज्योति (सूर्य) वह प्रकाशमय ईश्वर है जैसे (सूर्यः) यह सूर्यलोक (ज्योतिः हमारी आँख की ज्योति है।

४ (देवेन प्रकाशमान (सविता) सृष्टि के उत्पादक परमेश्वर के (सजूः) साथ और इन्द्रवत्या) सूर्य के साथ रहने वाली (उषसा) प्रभात वेला के (सजूर साथ (जुषाणः) प्रीति करता हुआ (सूर्यः सूर्य (वेतु) जगत को प्रकाशित करे। (स्वाहा) यह कथन सत्य और शोभायुक्त है।

ओ३म् भूरग्नये प्राणाय स्वाहा।
इदमग्नये प्राणाय इदन्नमम॥

ओ३म् भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा।
इदम् वायवेऽपानाय इदन्नमम॥

ओ३म् स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा।
इदम दित्याय व्यानाय इदन्नमम॥

ओ३म् भूर्भुवः स्वरग्नि वाय्वादित्येभ्यः प्राणापान व्यानेभ्यः स्वाहा। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापान व्यानेभ्यः इदन्नमम ॥

अग्नि रुप प्राणों के दाता हवि प्राणों के हित देते है।
व यु रुप तुम दुख विनाशक हम अपान हित हवि देते हैं।
तुम आदित्य रुप सुख के दाता, व्योम वृद्धि हित हवि देते हैं
भूर भुवः स्वः रुप विधाता, प्राणऽपान व्यान हित हवि देते हैं
शुद्ध भाव से स्वाहा कह कर, अग्नि रुप को अर्पित करते
स्वार्थ भाव से ऊपर उठ कर, प्रभु चरणों में सब कुछ धरते

ओ३म् भूरग्नये प्राणाय ......

१ अर्थ—(भूः) प्राणप्रिय प्रभू और (अग्नये अग्नि के लिये (प्राणाय) प्राण वायु के अनुकूलता के लिये यह आहुति देते हैं।

२ (भुवः) दुख नाशक प्रभु के लिये और (वायवे जीवन प्रद (अपनाय) आपान वायु की अनुकूलता के लिये यह आहुति देते हैं।

३ (स्वः) सुख स्वरूप प्रभु के लिये और (आदित्याय सूर्य के लिये (व्यानाय) व्यान वायु की अनुकूलता के लिये यह आहुति देते हैं।

४ भूः भुवः स्वः) प्राणस्वरुप दुख विनाशक, और सुख-स्वरूप प्रभु की प्रसन्नता के लिये और (अग्नि वायु आदित्येभ्यः) अग्नि

वायु और सूर्य की अनुकूलता के लिये और (प्राण अपान व्यानेभ्यः) प्राण अपान और व्यान वायु की अनुकूलता के लिये (स्वाहा) यह सुन्दर आहुति है। (इदम) यह अग्नि वायु और सूर्य की अनुकूलता के लिये और प्राण अपान, व्यान की स्वस्थता के लिये है -- (इदम् न मम) यह मेरे लिये नहीं।

ओ३म् आपो ज्योतीः रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरो स्वाहा।

ओ यां मेधाम् देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा।

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यद्भद्रं तन्न आसुव स्वाहा।

ओ३म् अग्नेनय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् युयोध्यस्म ज्जुहुराण मेनो भूयिष्ठांते। नम उक्ति विधेम स्वाहा।

भूर्भुवः स्वः रक्षक जिसका ज्योति छटा छिटकाता है
वही ब्रह्म जो घट २ व्यापी रस पीयूष पिलाता है।
उसी ज्योति को कर धारण मैं ज्योतिर्मय बन जाऊँ।
उत्तम रस का सेवन कर, मैं और सरस हो जाऊँ
दिव्यामृत को पान करूँ मैं अमृतमय बन जाऊँ
निष्काम भाव से श्रेष्ठ कर्म कर यज्ञ रुप हो जाऊँ

शुद्ध भाव से स्वाहा कह कर, अग्नि रूप को अर्पित करते
सकल ज्ञान उत्तम श्रद्धा से, प्रभु चरणों में सब कुछ धरते ॥

ओ३म् आपो······

अर्थ—(ओ३म्) सर्वरक्षक परमेश्वर (आपः) सर्वव्यापी (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप (रसः) आनन्द रस का दाता (अमृतं) अमर (ब्रह्म) सबसे बड़ा (भूः) सर्वाधार, (भुवः) सर्वव्यापक और (स्वः) सुखस्वरूप जो परमात्मा है उसके लिए यह आहुति है।

ओ३म् यां मेधां······

अर्थ—(याम) जिस (मेधाम्) बुद्धि का (देवगणाः) विद्वान जन (च) और (पितरः) रक्षक लोग (उपासते) आसरा लेते हैं। (तया) उस (मेधा) बुद्धि से अग्ने) हे ज्ञान स्वरूप परमेश्वर (माम्) मुझको (अद्य) आज (मेधाविनम्) बुद्धिमान (कुरु) तू कर (स्वाहा) यह कथन सत्य और शोभा युक्त है।

जिस श्रेष्ठ प्रज्ञा प्राप्ति हेतु देवगण भक्ति करें
औ सुमेधा हित पितर जन ईश आसक्ति करें
अग्नि रूप महा विभो हैं! प्रार्थना सुन लीजिए
अमृत समान ऋतम्भरा जो वह सुमेधा दीजिए।
शुद्ध भाव से स्वाहा कहकर अग्नि रूप को अर्पित करते
सकल ज्ञान उत्तम श्रद्धा से प्रभु चरणों में सब कुछ धरते।

ओ३म् विश्वानि देव······

अर्थ—इसका अर्थ प्रार्थना मंत्रों में आ चुका है।

देव सविता दूर कर दो, जो दुरित गुण-कर्म हैं
देव सब भरपूर करदो, भद्र जीवन धर्म है।
भद्र भावों को जगाकर, शुद्ध निर्मल बन सकूं
रूप जो सुन्दर तुम्हारा संयुक्त निज को कर सकूँ
शुद्ध भाव से स्वाहा कह कर अग्नि रूप को अर्पित करते
सकल ज्ञान उत्तम श्रद्धा से प्रभु चरणों में सब कुछ धरते

ओ३म् अग्ने नय सुपथा···

अर्थ इसका अर्थ प्रार्थना मंत्रों में आ चुका है।

हे अग्ने ज्योतिर्मय स्वामी, सदा सुपथ पर ले जाओ
हम हो धन वैभव के स्वामी, दुष्कर्मों से हमें बचाओ
यज्ञ रूप शुभ कर्मों से हम बहु विधि तेरी भक्ति करें।
हम विज्ञान ज्ञान-रथ पर चलकर, सब में आत्मिक शक्ति भरें
शुद्ध भाव से स्वाहा कह कर अग्नि रूप को अर्पित करते
सकल ज्ञान उत्तम श्रद्धा से, प्रभु चरणों में सब कुछ धरते

गायत्री मन्त्र—

ओ३म् । तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् स्वाहा। ऋक् ३।६२।१०

तीन पदों की गायत्री जो सकल गुणों की धर्ता है
ओ३म सदा जो रक्षक "तत" वह "सवितः" सकल सृष्टिकर्त्ता है

''वरेण्यं जो है श्रेष्ठ देवता 'भर्गः' शुद्ध स्वरुप रहे
'देवस्य' जो स्वयं प्रकाशक 'धी महिं', गुण ध्यानस्थ कहे
'यः' जो पिता 'नः' हम सबों को 'धियः' बुद्धि सुकर्म को
अपनी कृपा से 'प्रचोदयात' प्रेरित करे शुभ धम को
शुद्ध भाव से स्वाहा कह कर अग्नि रुप को अर्पित करते
सकल ज्ञान उत्तम श्रद्धा से प्रभु चरणों में सब कुछ धरते।

सायंकालीन हवन मन्त्र

ओ३म् अग्निर्ज्योतिः ज्योतिरग्नि स्वाहा। १
ओ३म् अग्निवर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा। २
ओ३म् अग्निर्ज्योति ज्योतिरग्निः स्वाहा। ३
ओ३म सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या जुषाणो
अग्निर्वेतु स्वाहा। ४
ओ३म भूरग्नये प्राणाय स्वाहा। इदग्नये प्राणाय
इदन्नम।
ओ३म भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा।
इदम वायवे अपानाय इदन्नम।
ओ३म स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा।
इदम आदित्याय व्यानाय इदन्नमम।

अग्नि समान जो ज्योति तुम्हारी अग्नि ज्योति के दाता हो
अग्नि तुल्य है ज्ञान तुम्हारा सकल ज्ञान उद्‌गाता हो
अग्नि ज्योति के रक्षक तुम हो अग्नि तेज विधाता हो
सकल ज्ञान ऐश्वर्य प्रकाशक सुख आनन्द प्रदाता हो
शुद्ध भाव से स्वाहा कहकर अग्नि रुप को अर्पित करते
सकल ज्ञान उत्तम श्रद्धा से प्रभु चरणों में सब कुछ धरते।

सेवनीय जो विद्युत प्यारी दिव्य ज्योति की कर्त्ता है
निशा काल में अग्नि रुप जो सकल तेज की धर्ता है
अंधकार में बनकर अग्निः मैं दीपक सा जलता जाऊँ
मौन भाव से भीतर झाँकूँ ज्योति रश्मि छिटकाऊँ
शुद्ध भाव से स्वाहा कह कर अग्नि रुप को अर्पित करते
सकल ज्ञान उत्तम श्रद्धा से, प्रभु चरणों में सब कुछ धरते

१. (अग्निः) परमेश्वर (ज्योतिः) प्रकाश स्वरुप है जैसे (ज्योति) प्रकाशमान (अग्निः) यह आग है।

२. (अग्निः) परमेश्वर (वर्चः) कान्तिदायक है यह (वर्चः) सब (ज्योतिः) उस ज्योतिर्मय परमेश्वर की है।

३. (अग्निः) परमेश्वर (ज्योतिः) संसार के नेत्र की ज्योति है। जैसे (अग्निः) आग का प्रकाश (ज्योतिः) हमारे नेत्र की ज्योति है।

४. (देवेन) प्रकाशमय (सविता) सृष्टि के उत्पादक परमेश्वर के (सजूः) साथ और (इन्द्रवत्या) सूर्य के साथ रहने वाली (रात्र्या) रात्रि के (सजूः) साथ (जुषाणः) प्रीति करती हुई (अग्निः) आग (वेतुः) जगत को प्रकाशित करें। (स्वाहा)।

ओ३म् भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापान व्यानेभ्यः स्वाहा। इदम् अग्नि वाय्वादित्येभ्य प्राणापान-व्यानेभ्यः इदन्मम।

ओ३म् आपो ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुव स्वरों स्वाहा।

ओ३म् यां मेधाम् देवगणाः पितरश्चोपासते। तयामामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरू स्वाहा।

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यद्भद्रं-तन्न आसुव।

ओ३म् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देववयुनानि विद्वान। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिविधेम

ओ३म् सर्वं वै पूर्ण ॐ स्वाहा।

पूर्णमासी की आहुतियाँ (पूर्णाहुति के पहले)

ओं अग्नये स्वाहा।

ओ३म् अग्नी षोमाभ्याम् स्वाहा।

ओ३म् विष्णवे स्वाहा।

ओ३म् भूरग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्नमम।

ओ३म् भुवर्वायवे स्वाहा। इदम् वायवे० इदन्नमम।

ओ३म् स्वरादित्याय स्वाहा। इदमादित्याय० इदन्नमम।

ओ३म् भूर्भुवः स्वरग्नि वाय्वादित्येभ्यः स्वाहा।

इदमग्नि वाय्वा दित्येभ्यः इदन्नमम।

अमावस्या को आहुतियाँ (पूर्णाहुति के पहले)

ओ३म् अग्नये स्वाहा।

ओ३म् इन्द्राग्नीभ्याम स्वाहा।

ओ३म् विष्णवे स्वाहा।

यज्ञोपवीत धारण करने का मंत्र

ओ३म् यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्। आयुष्यमग्रयम् प्रतिमुञ्चशुभ्रम्० यज्ञोपवीतं वलमस्तु तेजः॥

पुराना निकालते समय

ओ३म् यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्यत्वा यज्ञोपवीते नोपनह्यामि।

भोजन करने के पहले का मंत्र

ओ३म् अन्नपतेऽअन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः। प्र प्रदातारं तारिषऊर्ज्जम् नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे। यजु० ११। ८३

रात को सोते समय पाठ करने के मंत्र

ओ३म् यज्जाग्रतो दूर मुदैति दैवं
तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमम् ज्योतिषां ज्योतिरेकं,
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥१॥

ओ३म् येन कर्माण्यपसो मनीषिणो,
यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमंतः प्रजानाम्,
तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु। ॥२॥

ओ३म् यत्प्रज्ञानमुत चेतोधृतिश्च
यज्जोतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते
तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु ॥३॥

ओ३म् येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्
परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता
तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु ॥४॥

ओ३म् यस्मिन्नृचः सामयजूँषि
यस्मिन प्रतिष्ठिता रथना भाविवाराः
यष्मिश्चितँ सर्वमोतं प्रजानां
तन्मेमनः शिवसंकल्पमस्तु ॥५॥

ओ३म् सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्ने
नीयतेऽभीशुभिर्वाजिनइव
हृत प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं
तन्मेमनः शिवसंकल्प मस्तु ॥६॥

(१) यज्जाग्रतो ....

(यत) जो मन (दैवं) दिव्य गुणों से युक्त (जाग्रतः) जागते हुये का (दूरं) दूर (उत एति) दूर जाता है (उ) और (तत्) वह (सुप्तस्य) सोते हुये का (तथा एवं) इसी प्रकार (एति) जाता है। (दूरंगमम्) दूर तक जाने वाला (ज्योतिषाम्) विषयों के प्रकाशक चक्षुरादि इन्द्रियों का (एकं ज्योतिः) एक प्रकाशक है) (तत) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिव संकल्पम्) अच्छे संकल्प वाला (अस्तु) होवे।

(२) येन कर्माण्यपसो ....

(येन) जिनके द्वारा (अयसः) सत् कर्म निष्ठ (मनीषिणः) मन पर शासन करने वाले (धीराः) बुद्धिमान लोग (यज्ञं) यज्ञ आदि परोपकार के कार्यों में (विदथेषु) ज्ञान प्रचार के कार्यों

में या संग्राम आदि में (कर्माणि) कर्मों को (कृणवन्ति) करते है (यत) जो (प्रजानां अन्तः) प्राणि मात्र के भीतर (अपूर्व) अद्भुत (यक्ष) शक्ति है। (तत) वह मे) मेरा (मनः) मन (शिव संकल्पं अस्तु) कल्याण कारी संकल्प वाला होवे।

(३) यत्प्रज्ञानमुत ....

(यत) जो प्रज्ञानां) विशेष ज्ञान का साधन उत और (चेतो च) और स्मृति शक्ति का (धृतिः) धारण करने वाला है (यत्) जो (प्रजासु अन्तः) मनुष्य के भीतर (अमृतं) अमर न बुझने वाला (ज्योतिः) प्रकाश साधन है। (यश्मान्नऋते) जिसके बिना (किंचन) कोई भी (कर्म) काम (न क्रियते) नहीं किया जाता (तन्मे मनः शिव संकल्पं अस्तु) वह मेरा मन कल्याण कारी संकल्प वाला हो।

(४) येनेदं भूतंभुवनम्........

(अमृतेन) पूर्णचेतन (येन) जिस मन के द्वारा (भूतं) पिछला (भुवनं) वर्तमान और भविष्यत) आगामी (इदं सर्वः) यह सब ज्ञान (परिगृहीतम्) ग्रहण किया जा सकता है (येन) जिसके द्वारा (सप्त होता) दो कान, दो आँख, एक नाक, एक जीभ और एक त्वचा इत्यादि से सम्पादित किया जाने वाला (यज्ञः) ज्ञान यज्ञ (तायते) विस्तृत किया जाता है (तन्मे...अस्तु) यह मेरा मन कल्याणकारी संकल्प वाला हो।

(५) यस्मिन्नृचः साम ....

(यास्मिन) जिसमें (रथनामौ) रथ की नाभि में (अराः इव)

आरो की तरह (ऋचा) ऋगवेद (साम) साम वेद (यजूषि) यजुर्वेद (यस्मिन) और जिसमें अथर्ववेद (प्रतिष्ठिताः) ये सब प्रतिष्ठित है, जुड़े हुए है (यस्मिन) जिसमें प्रज्ञानां प्राणियों का सम्पूर्ण (चितं) ज्ञान (ओतः) ओत-प्रोत है (तन्मेमनः·········अस्तू) वह मेरा मन कल्याणकारी संकल्प वाला हो।

(६) सुषारथिरश्वानिव······

(सुषारथिः) सुसारथि अच्छा सारथी (इव) जिस प्रकार (अभी शुभिः) लगामों से (वाणिनः) वेगवाले (अश्वान) घोड़ों को (नेनीयते) ठीक मार्ग से ले जाता है उसी प्रकार (यत) जो मन (मनुष्यान्) मनुष्यों को विचार क्षेत्र में इधर-उधर ले जाता है (हृत्प्रतिष्ठ) जो हृदय में स्थित (अजिरं) और कभी वूढ़ा न होने वाला तथा (जविष्ठ) अत्यन्त वेगवान है (तन्मेमम··················अस्तू) वह मेरा मन कल्याणकारी संकल्प वाला हो।

—:—

भूत प्रेत की मिथ्या धारणा

भूत प्रेत मिथ्या है। न इनकी कोई शक्ति है न अस्तित्व। लोग बचपन से सन्तानों को भूत प्रेतादि की मिथ्या और मन गढ़न्त कहानी सुना सुनाकर उनके मनमें कुसंस्कार डाल देते हैं ऐसा न करें।

जिससे प्रौढ़ होने पर भी उनके मन में भय बना रहता है। जब मनुष्य का प्राणान्त होता है तो उस मृत शरीर को प्रेत कहा जाता है मनुस्मृति का वचन है—

"गुरौः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेवं समाचरन्।
प्रेत हारैः समंतत्र दश रात्रेण शुद्धयति॥" मनु०

अर्थ—जब गुरु का प्राणान्त हो तब मृतक शरीर जिसका नाम प्रेत है उसका दाह करने हारा शिष्य प्रेत हार अर्थात मृतक को उठाने वालों के साथ दशवें दिन शुद्ध होता है।

और जब शरीर का दाह हो चुका तब उसका नाम भूत होता है। अर्थात वह अमुक नामा पुरुष था। जितने उत्पन्न हो, वर्तमान में आ के न रहें वे भूतस्थ होने से उनका नाम भूत है। ऐसा ब्रह्मा से लेके आज पर्यन्त विद्वानों का सिद्धान्त है परन्तु जिसको शंका कुसंग कुसंस्कार होता है उसको भय और शंका रूप भूत प्रेत, शकिनी, डाकिनी आदि अनेक भ्रम जाल दुःखदायक होते हैं।

देखो जब कोई प्राणी मरता है तब उसका जीव पाप, पुण्य के वश होकर परमेश्वर की व्यवस्था से सुख दुःख के फल भोगने के अर्थ जन्मान्तर धारण करता है। क्या इस अविनाशी परमेश्वर की व्यवस्था का कोई भी नाश कर सकता है। अज्ञानी लोग वैद्यक

शास्त्र वा पदार्थ विद्या के पढ़ने, सुनने और विचार से रहित होकर सन्निपात ज्वरादि शारीरिक और उन्मादादि मानस रोगों का नाम भूत प्रेतादि धरते हैं। उनका औषध सेवन और पथ्यादि उचित व्यवहार न करके उन धूर्त, पाखण्डी. महामूर्ख, अनाचारी, स्वार्थी भंगी, चमार, शूद्र, म्लेच्छादि पर भी विश्वासी होकर अनेक प्रकार के ढोंग छल कपट और उच्छिष्ट भोजन, डोरा, धागा आदि मंत्र यंत्र बाधते बँधवाते फिरते हैं, अपने धन का नाश, सन्तान आदि की दुर्दशा और रोगों को बढ़ाकर दुख देते फिरते हैं। जब आँख के अन्धे और गाँठ के पूरे उन दुर्बुद्धि पापी, स्वार्थियों के पास जाकर पूछते हैं कि "महाराज। इस लड़का, लड़की, स्त्री और पुरुष को न जाने क्या हो गया है ?" तब वे बोलते है कि 'इसके शरीर में बड़ा भूत, प्रेत, भैरव, शीतला आदि देवी आ गई हैं। जब तक तुम इसका उपाय न करोगे तब तक ये न छूटेंगे और प्राण भी ले लेंगे। जो तुम मलीदा व इतनी भेंट दो तो मंत्र जप पुरश्चरण से झाड़ के इनको निकाल दें।

तब वे अन्धे और उनके सम्बन्धी बोलते हैं कि 'महाराज ! चाहे हमारा सर्वस्व जाओ परन्तु इनको अच्छा कर दीजिये। तब तो उनकी बन पड़ती है। वे धूर्त कहते हैं कि 'अच्छा लाओ इतनी सामग्री, इतनी दक्षिणा, देवता को भेंट और ग्रहदान कराओ।" झांझ, मृदंग, ढोल, थाली लेके उसके सामने बजाते गाते और उनमें से एक पाखण्डी उन्मत्त होके नाच-कूद के कहता है "मैं इसका प्राण ले लूँगा।" तब वे अन्धे उस भंगी, चमार आदि

नीच के पगों में पड़के कहते हैं "आप चाहें सो लीजिये इसको बचाइये।" तब धूर्त्त बोलता है मैं हनुमान हूँ लाओ पक्की मिठाई, तेल, सिन्दूर सवामन का रोट और लाल लँगोटा' मैं देवी का भैरवहुं लाओ पाँच बोतल मद्य, बीस मुर्गी, पाँच बकरे, मिठाई और वस्त्र।' जब वे कहते हैं कि 'जो चाहो सो लो" तब तो वह पागल बहुत नाचने कूदने लगता है परन्तु जब कोई बुद्धिमान उसकी भेंट 'पाँच जूता, दण्ड वा चपेट, लातें मारे, तो उसके हनुमान, देवी और भैरव झट प्रसन्न हो कर भाग जाते हैं क्योंकि वह उनका केवल धनादि हरण करने के प्रयोजनार्थ ढोंग है।

—सत्यार्थ प्रकाश द्वितीय समुल्लास से

गीत ऋषि के गायें

जो राह दिखाई दयानंद ने, जीवन में अपनायें।
शिव-रात्रि की बेला पर, हम गीत ऋषि के गायें॥
बाल ब्रह्मचारी थे जिनमें, भरा अपरिमित साहस था।
उनके मन में लहराता, देशभक्ति का मानस था॥
उस युग द्रष्टा का, जग को हम संदेश सुनायें।
शिव-रात्रि की बेला पर, हम गीत ऋषि के गायें॥
भूले वो हम राह, हमें वैदिक पथ पर मोड़ दिया।
अखण्ड भारत के खातिर, जन-जन का मन जोड़ दिया॥
सकल विश्व को मिल करके, फिर से आर्य बनायें।
शिव-रात्रि की बेला पर, हम गीत ऋषि के गायें॥
आर्य धर्म के हित जिसने, कंटक पथ को अपनाया।
सच्चे शिव के दर्शन हित, वैभव को भी ठुकराया॥
शंखनाद वेदों का आर्यों, धारा पर चलो गुजायें।
शिव-रात्रि की बेला पर हम गीत ऋषि के गायें॥
जो सेवा पथ पर कभी न हारे, किया सभी कुछ अर्पण।
युग-युग तक इतिहास करेगा, ऋषिवर तेरा वंदन॥
मानवता का शुभ संदेश, जन-जन तक पहुँचायें।
शिव-रात्रि की बेला पर, हम गीत ऋषि के गायें॥
टंकारा की धरती से, अब एक ही घोषणा सुनाओ।
अंधकार को चीर जगत्, में सत्य प्रकाश फैलाओ।
दयानंद की जय से, 'रश्मि" सारा गगण गुजायें।
शिव रात्रि की बेला पर, हम गीत ऋषि के गायें॥

भजन २

(सेवक की विनय)

मैं तेरा हूँ तेरे सदा गीत गाऊं,
कभी भूलकर न तुझे मैं भुलाऊं,
हृदय मन्दिर में ही तेरा ही ठिकाना,
तेरे प्रेम में हो रहूँ मैं दीवाना।
तू हो इष्ट मेरा बनूँ मैं पुजारी,
तेरे ध्यान में आयु बीते हमारी।
तेरे भक्ति से अपना जीवन सवांरू,
हर इक पल तेरी याद में ही गुजारू।

भजन ३

(मिटाले मैल अरे नादान)

मिटाले मैल अरे नादान मिले मन मन्दिर में भगवान
गंगा यमुना जी के तट पर- गोकुल मथुरा बँशीवट पर,
नाहक क्यों होता हैरान, मिले मन मन्दिर में भगवान्।
कस्तूरी मृग की नाभि, में-मूर्ख ढूढ़त बन झाड़ी में,
खोता भटक २ निज प्राण, मिले मन मन्दिर में भगवान
तुझ में बसे प्रभु प्यारा, फिर भी फिरता मारा मारा,
जब मिटे तेरा अज्ञान, मिले मन मन्दिर में भगवान्

——

भजन ४ ऋषि दयानन्द के भाव

कष्ट झेलूँगा मैं दुनिया को जगाने के लिये
आप मिट जाऊँगा पापों को मिटाने के लिये
है अमर आत्मा हरगिज कभी मरती नहीं
मौत आने के लिये जान जाने के लिये।
बनके परवाना जलूँगा धर्म के मार्ग पे मैं।
शमा बन जाऊँगा अंधियारी मिटाने के लिये॥
आप मरकर दूसरों को जिन्दगी दे जाऊँगा,
बीज गलता है खेती को उगाने के लिये।
अपना तन, मन धन लगा दूँगा मैं पर उपकार में।
है मेरा जीवन यह जग के काम आने के लिये॥
जाग तू "नन्द लाल" क्यों सोया है नाम कर,
जहर खाया था मैंने दुनिया को जगाने के लिये॥

भजन ५ देखा न सुना

यूँ तो कितने ही महापुरुष हुये हैं दुनिया में
कोई गुरु देव दयानन्द सा देखा न सुना॥
छोड़ माता पिता घर द्वार खजाने को,
चल दिया धार के व्रत ब्रह्मचर्य पाने को।
लगी दिल में थी लगन ऐसी ही दीवाने को,
होती दीपक से प्रीति जैसे परवाने को।
भटका जग में वो सत्य की सुराग पाने को
न मिला आह। उसे कितने दिन खाने को।

कभी मरुस्थल किया तै बन कभी कांटों वाला
कभी बरफानी पहाड़ी कभी नदी नाला
हुआ लथपथ लहू से तन पड़ा पाँव छाला
फेंके पत्थर किसीने साँप विषैला काला।
खड्ग चमकाया किसी ने किसी ने भाला
दिया नादानों ने कितनी ही वार विष का प्याला
फिर भी पीछे न हटा सत्य का वो मतवाला
आज मुँह से यूँ कह रहा है हर अदना आला
यूँ तो कितने ....॥१॥

पवनसुत

पाला हनुमान ने ब्रह्मचर्य था बस
अपने स्वामी रामचन्द्र को रिझाने को।
सुना है पाला ब्रह्मचर्य परशुराम ने था
पृथ्वी से नाम क्षत्रिय वंश का मिटाने को
पाला था ब्रह्मचर्य भीष्म पितामह ने भी
अपने पितु शान्तुन को सुखी बनाने को
किन्तु गुरु देव दयानन्द ब्रह्मचारी ने
पाला था ब्रह्मचर्य जग के दुख मिटाने को
दीन दुखियों की दशा देख दुखी होता है
सारा जग चैन में सोता था तब वह रोता था
विश्व कल्याण के साधन सभी सजोता था
एक पल भी वह कभी व्यर्थ न खोता था।

योगीजो आठ पहर ध्यान मग्न रहते हैं
देख स्वामी की तपस्या वो यही कहते हैं
यूँ तो कितने हो महा .... ॥२॥

किया जब ऋषि ने सत्य वेद का मण्डन
तर्क प्रतिमा से किया मिथ्या मतों का खण्डन
कहते खुद को थे जो गौतम कणाद से आला
हुये खामोश लगा मुँह पर सभी के ताला।
अजब था हाल पड़ा बुद्धि पे मानो पाला
सोचते थे बड़े विद्वान से पड़ा पाला
बैठे विठलाये हाय! कैसे ये झंझट पाला
लाखों के आगे अकेले ही जीता पाला,
पास स्वामी के ले जिज्ञासा जो विद्वान गये
पूर्ण पाण्डित्य का प्रतिमा का लोहा मान गये।
धर्म वैदिक है एक मात्र सही जान गये
कौन हीरा है कौन काँच? ये पहचान गये।
बौद्ध, जैनी, पौराणिक, व पादरी मुल्ला
छोड़कर पक्षपात यूँ बोले खुल्लम खुल्ला
यूँ तो कितने ही महा............................ ॥३॥

देह दीपक "प्रकाश" जब कि बुझने वाला था
कहने को थी दीवाली सच तो ये दीवाला था
आर्य जनता के हृदय बेतरह थी घबराहट
किन्तु ऋषि राज के मुख पर थी मन्जु मुस्कराहट
शान्त मन हो महर्षिजी ये वचन उचारे
तेरी इच्छा हो पूर्ण! परम पिता प्यारे

देख के दृश्य ये गुरुदत्त को हुई हैरानी
जो कि नास्तिक थे परम हो गये आस्तिक ज्ञानी
स्वामी महाराज की प्रतिभा प्रकाण्ड पहचानी
झुक के चरणो में बोले प्रेम भरी ये वाणी
यूँ तो .... ॥४॥

भारते मान रहे मिथ्याचार मण्डी,
वेद अनुयायी यें रक्षक ये ओ३म झण्डी के
पूर्ण प्रतिद्वन्दी रहे पातकी पाखण्डी के
निराले शिष्य गुरु विरजानन्द दण्डी के।
जैसे कवि अपने मधुर छन्द पर निछावर है
जैसे प्रेमी चकोर चन्द पर निछावर है
भृङ्ग अरविन्द के मकरन्द पर निछावर है
तैसे दिल मेरा दयानन्द पर निछावर है।
जिसने मृत आर्य जाति को पुनः जिलाया है
खुद जहर खाकर वेदामृत हमें पिलाया है
धैर्य विधवा अनाथ दलितों को दिलाया है
जिसने बिछुड़े हुओं को हमसे फिर मिलाया है
उस दयानन्द पे बलिहार क्यों न जायें हम
क्यों न उसके लिए सर्वस्व निज चढ़ायें हम
आर्य बन सच्चे क्यों न उसका ऋण चुकायें हम
क्यों न श्रद्धा से गीत ये प्रकाश गायें हम
यूँ तो कितने ही महा——— ॥५॥

भजन ६

जबतलक

जबतलक्क वैदिक धर्म न अपनायेगा,
सारा जीवन तेरा नष्ट हो जायगा।
तुम्हें पाण्डे पुजारी बहकाते रहे
राम कृष्ण को ही ईश्वर बताते रहे
सच्चे ईश्वर का भेद ना तू पायेगा
सारा जीवन तेरा नष्ट हो जायगा।
है निराकार प्रभु को भुलाया हुआ
सबके घट-घट के अन्दर समाया हुआ।
वेद विद्या से इसका पता पायेगा
सारा जीवन तेरा सुधर जायगा।
तीर्थों मन्दिरों में लगाया गोता
बोलता ही रहा शेरों वाली की जय
ये करना वो धरना व्यर्थ हो जायगा
सारा जीवन तेरा नष्ट हो जायगा।
जो गई सो गई रखले तू रही
ओ३म् नाम जप यही मार्ग है सही
गर न माना तो फिर पीछे पछतायेगा
सारा जीवन तेरा नष्ट हो जायेगा।
जबतलक वैदिक.................................

भजन ७

हायरे बन्दे तूने यह क्या किया

प्रभु को न याद किया, जीवन बरबाद किया,
हाय रे बन्दे यह क्या किया तूने यह क्या किया।

कोमल सा फूल प्यारे जिसने बनाया तुझे,
उसके न पास गया ले गयी माया तुझे,
विषयों ने वार किया पहले बीमार किया,
आखिर.........को ख्वार किया।
हाय रे बन्दे ये क्या किया तूने ...

भँवरे की भाँति तूने, हर गुल से प्यार किया,
एक फूल चम्पा का था, उसके न पास गया,
यदि उसके पास जाता, मुक्ति का आनन्द पाता,
अन्त को न पछताता............॥ हायरे बन्दे॥

बन कर परवाना महर्षि दयानन्द आया था,
सत् की सभा के अन्दर खुद को जलाया था।
जनता के लिये जिया जीवन न्यौछावर किया,
भूषण तूने कुछ ना किया, केवल खाया पिया।
हायरे बन्दे तूने यह क्या किया॥

भजन ८

तू कहता प्रभु ने

तू कहता है प्रभु ने दिया न कुछ मुझको
बता प्रभु ने तुझको दिया क्या नहीं है ?
कि तेरे लिये किस सफाई से सुन्दर
मनुज का ये चोला सिया क्या नहीं है ?
सरस स्वेत शोभन श्यामल निराली,
तुझे आँख दी ईश ने ज्याति वाली।
चपल जीभ से स्वादु भोजन मधुर रस
बता तूने खाया पिया क्या नहीं है ?
श्रवण से सुने शब्द वाणी से बोला,
गही नाक से गन्ध चरणों से डोला।
दिये हाथ भी हैं तुझे शक्तिशाली
बता काम इनसे लिया क्या नहीं है ?
अनल वायु जल भूमि आकाश अनुपम
दिये सूर्य शशि फल फूल अन्न उत्तम।
तनिक सोच प्यारे इन्हीं के सहारे
सुखी तू जगत में जिया क्या नहीं है ?
कहे 'लालमन' आर्य शुभ कार्य कर नर।
सुदानी दयासिन्धु प्रभु को सुमिर नर।
रचा प्राणियों में तूही श्रेष्ठ मानव,
ये उपकार तुझ पर किया क्या नहीं है ?

भजन ६

प्रभु जी तेरी लीला

प्रभु जी तेरी लीला है अपरम्पार।
जगके मालिक सबके पालक ओ जग के करतार।
ओ अविनाशी घट-घट वासी भेद न तेरा पाया।
सब जड़ चेतन में रहकर भी नजर किसी को न आया।
पर जो तेरा हो जाये, तुझे हर रंग में वह पाये।
करे सदा तेरा दीदार प्रभुजी तेरी लीला है अपरंपार
बिनु मांगे दे मुफ्त सभी को हवा रोशनी पानी
दान करे और जतलाये ना गजब का तू है दानी
तू सबको देवे दाता तेरा दिया हुआ हर कोई खाता
तेरे भरे हुये भण्डार प्रभु जी तेरी लीला अपरम्पार।
दिनको दुनिया काम करे और रात को करे आराम
रात न होती तो सबकी हो जाती नींद हराम
क्या खूब नियम है तेरा जाये रात और आये सवेरा
हर रोज नियम अनुसार प्रभु जी................
ओ सेवक के मालिक तेरी हर इक बात निराली
हम तो छुट्टियां करते पर तू न बैठे खाली
दिन रात और साँझ सबेरे खुले रहते है दफ्तर तेरे
तू सबसे बड़ी सरकार""प्रभु जी तेरी लीला है अपरम्पार।

भजन १०— गाये प्रभु नाम

बंठ सत्संग में, रंग प्रभु रंग में, प्रेम की उमंग में
॥ गायें प्रभु नाम ॥
बह रही जो प्रेम की नहायें इस गंग में ॥ गायें प्रभु नाम ॥
दुनिया के झंझटों से मन को हटा,
प्रभु के चरणों में चित्त को लगा।
जीवन बीताएँ साधुओं के संग में ॥ गायें प्रभु नाम ॥
सत्य और झूठ का भेद जान लें
भला क्या है बुरा क्या है यह पहचान लें
जीवन बितायें सुन्दर से ढंग में ॥ गायें प्रभु नाम ॥
प्रभु नाम गान करें नित्य प्रति हम,
तभी भव सागर से तर जायें हम।
भक्तों ने यह कहा प्रेम की तरंग में ····गायें प्रभुनाम ॥

भजन ११—उसे इन्सान कहते हैं

किसी के काम जो आये उसे इन्सान कहते हैं। उसे इन्सान····
पराया दर्द अपनाये उसे इन्सान कहते हैं। उसे इन्सान····
कभी सुख है कभी दुःख है इसी का नाम जीवन है,
कभी धनवान है कितना, कभी इन्सान निर्धन है।
जो दुःखों से न घबराये उसे इन्सान कहते हैं।
यह दुनिया एक उलझन है कहीं धोखा कहीं ठोकर
कोई हँस हँसके जीता है कोई जीता है रो रोकर।

जो गिर कर भी सँभल जाये उसे इन्सान कहते हैं
अगर गलती रुलाती है तो रास्ता भी दिखाती है
बशर गलती का पुतला है यह अक्सर हो ही जाती है
जो गलती कर सुधर जाये उसे इन्सान कहते हैं।
अकेले ही जो खा खा कर सदा गुजरान करते हैं
यो भरने के तो दुनिया में पशु भी पेट भरते हैं
"पथिक" जो बाँटकर खाये उसे इन्सान कहते हैं
उसे इन्सान कहते हैं।

भजन १२

प्रभु प्यारे से जिसका सम्बन्ध है

प्रभु प्यारे से जिसका सम्बन्ध है।
उसे हरदम आनन्द ही आनन्द है॥
झूठी ममता से करके किनारा लेके सच्चे पिता का सहारा
जो उसकी रजा में रजामन्द है, उसे हरदम आनन्द ही आनन्द है।
जिसकी कथनी में कोयल सी चहक है
जिसकी करनो में फूलों सी महक है।
प्रेम नरमी ही जिसकी सुगंध है
उसे हरदम आनन्द ही आनन्द है।
निन्दा चुगली न जिसको सुहावे
बुरी संगत की रंगत न जिसको भावे
सत्संगत ही जिसको पसन्द है,
उसे हरदम आनन्द ही आनन्द है।

दीन दुखियो के दुःख को जो बँटावे
बनके "सेवक" भला सबका चाहे
नहीं जिसमें घमण्ड और पाखण्ड है,
उसे हरदम आनन्द ही आनन्द है।

भजन १३—मानव प्रभु को भुला न देना

समय मिला यह गवाँ न देना।
चंचल मन को वश में लाओ,
प्रभु भक्ति में इसे लगाओ।
इस मार्ग को भुला न देना॥
जोश जवानी तुझ पर छायी,
प्यारे करले नेक कमायी।
अपना ध्यान हटा न देना॥
माया मोह के कुटिल जाल में
और व्यसनों के भ्रष्ट जाल में
कभी मन को फसाँ न देना।
मानव प्रभु को भुला न देना॥

भजन १४—लाखों में वार करता इक सूरमा अकेला

यह मत कहो कि जग में कर सकता क्या अकेला
लाखों में वार करता, इक सूरमा अकेला॥
आकाश में करोड़ों तारे हैं टिमटिमाते
अन्धकार दूर करता इक चन्द्रमा अकेला।
लोहे की पटरियों पर होते अनेक डिब्बे।
लेकिन सभी को इंजन है खींचता अकेला॥

होते हैं ओखली में अनगिनत धान के कण।
लेकिन सभी को मूसल दल डालता अकेला ॥

लंकापुरी जलाकर असुरों का मद मिटाकर।
हनुमान राम दल में फिर आ मिला अकेला ॥

इक रोज शाहजहाँ के दरवार में अमर सिंह।
अपनी कटारी का बल दिखला गया अकेला ॥

जापान में सजाकर आजाद हिन्द सेना।
नेता सुभाष जौहर दिखला गया अकेला।

था कुल जगत विरोधी फिर भी ऋषि दयानन्द
वैदिक धर्म का झण्डा फहरा गया अकेला ॥ *

भजन १५—देखा न कोई दूजा ऋषिवर महान जैसा

देखा न कोई दूजा ऋषिवर महान जैसा
इक ओर सारी दुनिया इक ओर वह अकेला।

कुछ पास में नहीं था चेली न कोई चेला,
दुनिया हर सितम को मर्दानगी से झेला।
हरदम रहा अड़ा वह सुदृढ़ चट्टान जैसा।
देखा किसी का दुख तो ऋषिवर की आँख रोई,
जग के लिये ऋषि ने रातों की नींद खोई।

देखे अनेक त्यागी ऋषिराज सा न कोई।
दिल था विशाल इतना, है आसमान जैसा ॥
ऋषि ने कहा समाधि, मेरी नहीं बनाना।
मेरे तन की राख लेकर खेतों में जा गिराना ॥
वेदों के पथ से चलना, संसार को चलाना।
वन जाय 'श्याम' जीवन ऋषिवर महान जैसा ॥

❀ मूर्तिपूजा-समीक्षा ❀

॥ ओ३म् ॥

मूर्ति पूजा वेदो के विरुद्ध है और करना अधर्म है !

सत्य सनातन वेदोक्त कर्म का पालन करना धर्म है

(मनुष्य मात्र के कल्याणार्थ सत्यार्थ प्रकाश से)

नास्तिको वेदनिन्दकः ॥१॥ [मनु० २ । ११] ॥

या वेद बाह्याः स्मृतयो याश्च काँश्च कुदृष्टयः ।

सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ।२।

उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित् ।

तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च ॥३॥

मनु० अ० १२ श्लों० ९५ ९६) ॥

मनुजी कहते हैं कि जो वेदों की निन्दा अर्थात अपमान, त्याग, विरुद्धाचरण करता है वह नास्तिक कहाता है ॥१॥ जो ग्रन्थ वेदबाह्य कुत्सित पुरुषों के बनाये संसार को दुःखसागर में डुबाने वाले हैं वे सब निष्फल, असत्य अन्धकार रूप, इस लोक और परलोक में दुःखदायक हैं ॥२॥ जो इन वेदों से विरुद्ध ग्रन्थ उत्पन्न होते हैं वे आधुनिक होने से शीघ्र नष्ट हो जाते हैं । उनका मानना निष्फल और झूठा है ॥३॥ इसी प्रकार ब्रह्मा से लेकर जैमिनि महर्षिपर्यन्त का मत है कि वेद विरुद्ध को न मानना किन्तु वेदानुकूल ही का आचरण करना धर्म है। क्यों ? वेद सत्य अर्थ का प्रतिपादक है, इससे विरुद्ध जितने तन्त्र और पुराण हैं वेदविरुद्ध होने से झूठे हैं

कि जो वेद से विरुद्ध चलते हैं उनमें कही हुई मूर्तिपूजा भी अधर्मरूप है। मनुष्यों का ज्ञान जड़ की पूजा से नहीं बढ़ सकता किन्तु जो कुछ ज्ञान है वह भी नष्ट हो जाता है। इसलिये ज्ञानियों की सेवा सङ्ग से ज्ञान बढ़ता है, पाषाणादि से नहीं। क्या पाषाणादि मूर्त्तिपूजा से परमेश्वर को ध्यान में कभी ला सकता है ? नहीं नहीं, मूर्त्तिपूजा सीढ़ी नहीं किन्तु एक बड़ी खाई है जिसमें गिर कर चकनाचूर हो जाता है। पुनः उस खाई से निकल नहीं सकता किन्तु उसी में मर जाता है। हाँ छोटे धार्मिक विद्वानो से लेकर परम विद्वान् योगियों के संग से सद्विद्या और सत्यभाषणादि परमेश्वर की प्राप्ति की सीढ़ियाँ हैं, जैसी ऊपर घर में जाने की निःश्रेणी होती है। किन्तु मूर्त्तिपूजा करते-करते ज्ञानी तो कोई न हुआ प्रत्युत सब मूर्त्तिपूजक अज्ञानी रह कर मनुष्यजन्म व्यर्थ खोके बहुत से मर गये और जो अब हैं वा होंगे वे भी मनुष्यजन्म के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्तिरूप फलों से विमुख होकर निरर्थ नष्ट हो जायेंगे। मूर्तिपूजा ब्रह्म की प्राप्ति में स्थूल लक्ष्यवत् नहीं किन्तु धार्मिक विद्वान् और सृष्टिविद्या है। इसको बढ़ाता-बढ़ाता ब्रह्म को भी पाता है और मूर्त्ति गुड़ियों के खेलवत नहीं किन्तु प्रथम अक्षराभ्यास सुशिक्षा का होना गुड़ियों के खेलवत ब्रह्म की प्राप्ति का साधन है। सुनिये ! जब अच्छी शिक्षा और विद्या को प्राप्त होगा तब सच्चे स्वामी परमात्मा को भी प्राप्त हो जायगा।

प्र०—साकार में मन स्थिर होता और निराकार में स्थिर होना कठिन है, इसलिये मूर्तिपूजा करनी चाहिये।

उ०—साकार में मन स्थिर कभी नहीं हो सकता, क्योंकि उसको मन झट ग्रहण करके उसी के एक-एक अवयव में घूमत और दूसरे में दौड़ जाता है, और निराकार अनन्त परमात्मा के ग्रहण में यावत्सामर्थ्य मन अत्यन्त दौड़ता है तो भी अन्त नहीं पाता। निरवयव होने से चंचल भी नहीं रहता किन्तु उसी के गुण कर्म स्वभाव का बिचार करता-करता आनन्द में मग्न होकर स्थिर हो जाता है। और जो साकार में स्थिर होता तो सब जगत का मन स्थिर हो जाता क्योंकि जगत में मनुष्य, स्त्री, पुत्र, धन, मित्र आदि साकार में फँसा रहता है, परन्तु किसी का मन स्थिर नहीं होता जब तक निराकार में न लगावे. क्यों कि निरवयव होने से उसमें मन स्थिर हो जाता है। इसलिये मूर्त्तिपूजा करना अधर्म है। दूसरा—उसमें करोड़ों रुपये मन्दिरों में व्यय करके दरिद्र होते हैं और उसमें प्रमाद होता है। तीसरा—स्त्री पुरुषों का मन्दिरों में मेला होने से व्यभिचार. लड़ाई, बखेड़ा और रोगादि उत्पन्न होते है। चौथा-उस को धर्म, अर्थ, काम और मुक्ति का साधन मानके पुरुषार्थ रहित होकर मनुष्यजन्म व्यर्थ गवाता है। पांचवा—नाना प्रकार की विरुद्धस्वरूप नाम चरित्रयुक्त मूर्त्तियों के पुजारियों का ऐक्यमत नष्ट होके विरुद्धमत में चल कर आपस में फूट बढ़ा के देश का नाश करते हैं। छठा—उसी के भरोसे में शत्रु की पराजय और अपनी विजय मान बैठे रहते हैं। उनको पराजय होकर राज्य, स्वातन्त्र्य और धन का सुखः उनके शत्रुओं के आधीन होता है और आप पराधीन भठियारे के टट्टू और धोबी के गदहे के समान शत्रुओं के वश में होकर अनेक विधि दुःख पाते हैं। सातवाँ—जब कोई

किसी को कहे कि हम तेरे बैठने के आसन वा नाम पर पत्थर धरें तो जैसे वह उस पर क्रोधित होकर मारता वा गाली प्रदान [कर] देता है वैसे ही जो परमेश्वर के उपासना के स्थान हृदय और नाम पर पाषाणादि मूर्तियाँ धरते है उन दुष्ट बुद्धिवालों का सत्यानाश परमेश्वर क्यों न करे। आठवाँ—भ्रान्त होकर मन्दिर-मन्दिर देशदेशान्तर में घूमते-घूमते दुःख पाते, धर्म संसार और परमार्थ का काम नष्ट करते, चोर आदि से पीड़ित होते ठगों से ठगाते रहते हैं। नवाँ - दुष्ट पुजारियों को धन देते हैं वे उस धन को वेश्या, परस्त्रीगमन, मद्य, मांसाहार लड़ाई बखेड़ा में व्यय करते हैं जिससे दाता का सुख का मूल नष्ट होकर दुःख होता है। दशवाँ - माता पिता आदि माननीयों का अपमान कर पाषाणादि मूर्तियो का मान करके कृतघ्न हो जाते हैं। ग्यारहवां—उन मूर्तियों को कोई तोड़ डालता वा चोर ले जाता है तब हा-हा करके रोते रहते हैं। बारहवां—पूजारी परस्त्रियों के सङ्ग और पुजारिन् पर-पुरुषों के सङ्ग से प्रायः दूषित होकर स्त्री पुरुष के प्रेम के आनन्द को खो बैठते हैं। तेरहवाँ—स्वामी सेवक की आज्ञा का पालन यथावत् न होने से परस्पर विरुद्धभाव होकर नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं। चौदहवाँ—जड़ का ध्यान करने वाले का आत्मा भी जड़ बुद्धि हो जाता है, क्यों कि ध्येय का जड़त्व धर्म अन्तःकरण द्वारा आत्मा में अवश्य आता है। पन्द्रहवां परमेश्वर ने सुगन्धियुक्त पुष्पादि पदार्थ वायु जल के दुर्गन्ध निवारण और आरोग्यता के लिये बनाए हैं, उनको पुजारीजी तोड़ताड़ कर बर्बाद कर देते हैं। न जाने उन पुष्पों की कितने दिन तक सुगन्धि आकाश में चढ़कर वायु जल की

शुद्धि करता और पूर्ण सुगन्धि के समय तक उसका सुगन्ध होता, उसका नाश मध्य में ही कर देते हैं। पुष्पादि कीच के साथ मिल सड़ कर उल्टा दुर्गन्ध उत्पन्न करते हैं। क्या परमात्मा ने पत्थर पर चढ़ाने के लिये पुष्पादि सुगन्धियुक्त पदार्थ रचे हैं? सोलहवां पत्थर पर चढ़े हुए पुष्प चन्दन और अक्षत आदि सबका जल और मृत्तिका के संयोग होने से मोरी वा कुण्ड में आकर सड़के इतना उससे दुर्गन्ध आकाश में चढ़ता है कि जितना मनुष्य के मल का और सहस्रों जीव उसमें पड़ते, उसो में मरते और सड़ते हैं। ऐसे ऐसे अनेक मूर्तिपूजा के करने में दोष आते हैं। इसलिये सर्वथा पाषाणादि मूर्तिपूजा सज्जन लोगों को त्यक्तव्य हैं और जिन्होंने पाषाणमय मूर्ति की पूजा की है, करते हैं और करेंगे, वे पूर्वोक्त दोषों से न बचे, न बचते हैं, और न बचेंगे।

प्रश्न—किस प्रकार की मूर्तिपूजा करनी करानी नहीं और जो अपने आर्य्यावर्त में पंचदेवपूजा शब्द प्राचीन परम्परा से चला आता है उसका यही पंचायतन पूजा जो कि शिव, विष्णु, अम्बिका गणेश और सूर्य्य की मूर्ति बनाकर पूजते हैं यह पंचायतनपूजा है वा नहीं?

उत्तर - किसी प्रकार की मूर्तिपूजा न करना, किन्तु 'मूर्तिमान' जो नीचे कहेंगे उनकी पूजा अर्थात् सत्कार करना चाहिये। वह पंचदेवपूजा, पंचायतनपूजा शब्द बहुत अच्छा अर्थ वाला हैं परन्तु विद्याहीन मूढ़ों ने उसके ऊत्तम अर्थ को छोड़ कर निकृष्ट अर्थ पकड़ लिया। जो आजकल शिवादि पांचों की मुर्त्तियाँ बनाकर

पूजते हैं उनका खण्डन तो अभी कर चुके हैं। पर जो सच्ची पंचायतन वेदोक्त और वेदानुकूलोक्त देवपूजा और मूर्त्ति पूजा है [वह] सुनोः—

मा नो वधीः पितरं मोत मातरम् ॥ १ ॥

यजु० (अ० १६) म १५ ॥

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणेमिच्छते । २ ॥

(अथर्व० ११ । ५ । १७) ॥

अतिथिर्गृहानागच्छेत ॥ ३ ॥

अथर्व० (काँ० १५ । व० १३ । मं०० ६) ॥

अर्चत प्रार्चत प्रिय मेधासो अर्चत ॥ ४ ॥

(ऋग्वेदे (म० ८ । सू० ६६ । म० ८) ॥

त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ॥५॥

तत्तिरीयोपनि० (वल्लौ० १ । अनु० १) ॥

कतम एको देव इति स ब्रह्म त्यादित्याचक्षते ॥ ६ ॥

शतपथ० (काँ० १४) । प्रपाठ० ५ । ब्राह्म० ७ । कण्डिका १० ॥

मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्य देवो भव
अतिथि देवो भव ॥७॥

तैत्तिरीयोप० शिक्षावल्ली० । अनु० ११) ॥

पितृभिर्भ्रातृमिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा ।
पूज्याभूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ।७। मनु० (३ ।५५
पूज्यो देवत्पतिः ॥१॥ मनुस्मृती (५ । १५४) ॥

प्रथम माता मूर्त्तिमती पूजनीय देवता, अर्थात् सन्तानों को तन मन धन से सेवा करके माता को प्रसन्न रखना, हिंसा अर्थात् ताड़ना कभी न करना। दूसरा पिता, सत्कर्त्तव्य देव। उसकी भी माता के समान सेवा करनी ॥ १ ॥ तीसरा आचार्य जो विद्या का देने वाला है उसकी तन मन धन से सेवा करनी ॥ २ ॥ चौथा अतिथि जो विद्वान, धार्मिक, निष्कपटी, सब की उन्नति चाहने वाला, जगत में भ्रमण करता हुआ, सत्य उपदेश से सब को सुखी करता है उसकी सेवा करें ॥ ३ ॥ पाँचवाँ स्त्री के लिये (स्व) पति और पुरुष के लिये स्व पत्नी पूजनीय है ॥ ४ ॥ ये पाँच मूर्त्तिमान् देव जिनके संग से मनुष्यदेह की उत्पत्ति, पालन, सत्यशिक्षा, विद्या और सत्योपदेश को प्राप्ति होती है। ये ही परमेश्वर को प्राप्ति होने की सीढ़ियाँ हैं। इनकी सेवा न करके जो पाषाणादि मूर्त्ति पूजते हैं वे अतीव वेद विरोधी हैं।

प्रश्न—माता पिता आदि की सेवा करे और मूर्त्तिपूजा भी करे तब तो कोई दोष नहीं ?

उत्तर - पाषाणादि मूर्त्तिपूजा तो सर्वथा छोड़ने और मातादि मुर्त्तिमानों की सेवा करने ही में कल्याण है। बड़े अनर्थ की बात है कि साक्षात माता आदि प्रत्यक्ष सुखदायक देवों को छोड़ के अदेव पाषाणादि में शिर मारना स्वीकार किया। इस को लोगों ने इसलिये स्वीकार किया है कि जो माता पितादि के सामने नैवेद्य वा भेंट पूजा धरेंगे तो वे स्वयं खा लेंगे और भेंट पूजा ले लेंगे तो हमारे मुख वा हाथ में कुछ न पड़ेगा। इससे पाषाणादि

की मूर्त्ति बना, उसके आगे नैवेद्य धर, घटानाद टंट पूंपूं और शंख बजा, कोलाहल कर, अँगूठा दिखला अर्थात 'त्वमंगुष्ठं गृहाण भोजन पदार्थ वाऽहं ग्रहीष्यामि" जैसे कोई किसी को छले वा चिढ़ावे कि तू घंटा ले और अंगूठा दिखलावे उसके आगे से सब पदार्थ ले आप भोगे, वैसी ही लीला इन पुजारियों अर्थात पूजा नाम सत्कर्म के शत्रुओं की है। ये लोग चटक मटक, चलक झलक मूर्त्तियों को बन ठना आप ठगों के तुल्य बन ठन के बिचारे निर्बुद्धि अनाथों का माल मारके मौज करते हैं। जो कोई धार्मिक राजा होता तो इन पाषाणप्रियों को पत्थर तोड़ने बनाने और घर रचने आदि कामों में लगाके खाने पीने को देता, निर्वाह करता।

प्रश्न जैसे स्त्री आदि की पाषाणादि मूर्त्ति देखने से कामोत्पत्ति होती हैं वैसे वीतराग शान्त की मूर्त्ति देखने से वैराग्य और शान्ति प्राप्ति क्यों न होगी ?

उत्तर—नहीं हो सकती, क्योंकि वह मूर्त्ति के जड़त्व धर्म आत्मा में आने से विचार शक्ति घट जाती है। विवेक के बिना न वैराग्य विज्ञानके बिना शान्ति नहीं होती। और जो कुछ होता है सो उनके संग उपदेश और उनके इतिहासादि के देखने से होता है, क्योंकि जिसका गुण वा दोष न जानके उसकी मूर्त्तिमात्र देखने से प्रीति नहीं होती। प्रीति होने का कारण गुणज्ञान है। ऐसे मूर्त्तिपूजा आदि बुरे कारणों ही से आर्य्यावर्त्त में निकम्मे पूजारी भिक्षुक आलसी पुरुषार्थ रहित क्रोड़ों मनुष्य हुए हैं। सब संसार में मूढ़ता उन्होंने फैलाई है। झूठ छल भी बहुत सा फैला है।

प्रश्न—देखो ! काशी में "औरंगजेब" बादशाह को 'लाटभैरव" आदि ने बड़े-बड़े चमत्कार दिखलाये थे। जब मुसलमान उनको तोड़ने गये और उन्होंने जब उन पर तोप गोला आदि मारे, तब बड़े-बड़े भँवरे निकल कर सब फौज को व्याकुल कर भगा दिया ?

उत्तर—यह पाषाण का चमत्कार नहीं। किन्तु वहाँ भँवरे के छत्ते लगे रहे होंगे उनका स्वभाव ही क्रूर है। जब कोई उनको छेड़े तो वे काटने को दौड़ते हैं। और जो दूध की धारा का चमत्कार होता था वह पूजारी जी की लीला थी।

प्रश्न—देखो ! महादेवा म्लेच्छ को दर्शन न देने के लिये कूप में और वेणीमाधव एक ब्राह्मण के घर में जा छिपे। क्या यह भी चमत्कार नहीं है ?

उत्तर भला जिसके कोटपाल कालभैरव आदि भूत प्रेत और गरुड़ आदि गणों ने मुसलमानों को लड़ के क्यों न हटाये ? जब महादेव और विष्णु की पुराणों में कथा है कि अनेक त्रिपुरासुर आदि बड़े भयंकर दुष्टों को भस्म कर दिया तो मुसलमानों को भस्म क्यों न किया ? इससे यह सिद्ध होता है कि वे बिचारे पाषाण क्या लड़ते लड़ाते ? जब मुसलमान मन्दिर और मूर्त्तियों को तोड़ते फोड़ते हुए काशी के पास आए तब पूजारियों ने उस पाषाण के लिंग को कूप में डाल और वेणीमाधव को ब्राह्मण के घर में छिपा दिया। जब काशी में काल भैरव के डर के मारे यमदूत नहीं जाते और प्रलय समय में भी काशी का नाश होने नहीं देते तो म्लेच्छों के दूत क्यों न डराये ? और अपने राज के मन्दिर का क्यों नाश होने दिया ? यह सब पोपमाया है।

प्र०—जो रामेश्वर में गंगोत्तरी के जल चढ़ाने समय लिङ्ग बढ जाता है, क्या यह भी बात झूठी है ?

उ०—झूठी, क्योंकि उस मन्दिर में दिन में भी अन्धेरा रहता हैं। दीपक रात दिन जला करते हैं। जब जल की धारा छोड़ते हैं तब उस जल में बिजुली के समान दीपक का प्रतिविम्ब झलकता है, और कुछ भी नहीं। न पाषाण घटे, न बढ़े, जितना का उतना रहता है। ऐसी लीला करके विचारे निर्बुद्धियों को ठगते हैं।

प्र० रामेश्वर की रामचन्द्र ने स्थापना की है। जो मूर्त्तिपूजा वेदविरुद्ध होती तो रामचन्द्र मूर्त्तिस्थापन क्यों करते और वाल्मीकि जी रामायण में क्यों लिखते ?

उ० - रामचन्द्र के समय में उस लिंग वा मन्दिर का नाम चिन्ह भी न था, किन्तु यह ठीक है कि दक्षिण देशस्थ रामनामक राजा ने मन्दिर बनवा लिंग का नाम रामेश्वर धर दिया है। जब रामचन्द्र सीताजी को ले हनुमान आदि के साथ लङ्का से चले। आकाश मार्ग में विमान पर बैठ अयोध्या को आते थे तब सीताजी से कहा है कि : -

अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः ॥

सेतुबन्ध इति विख्यातम ॥

बाल्मीकि रा० लंका का० (देखिये—युद्धकाण्ड सर्ग १२३ । श्लोक २०, २१ ॥

हे सीते ! तेरे वियोग से हम व्याकुल होकर घूमते थे और इसी स्थान में चातुर्मास किया था और परमेश्वर की उपासना ध्यान भी

करते थे। वही जो सर्वत्र विभु (व्यापक) देवों का देव महादेव परमात्मा है उसकी कृपा से हमको सब सामग्री यहाँ प्राप्त हुई। और देख ! यह सेतु हमने बांधकर लंका में आके, उस रावण को मार, तुझको ले आये। इसके सिवाय वहां बाल्मीकि ने अन्य कुछ भी नहीं लिखा।

सृष्टि से लेके पाँच सहस्त्र वर्षों से पूर्व समय पर्यन्त आर्यों का सार्व भौम चक्रवर्ती अर्थात भूगोल में सर्वोपरि एक मात्र राज्य था, पांडव पर्यन्त आर्यों का चक्रवर्ती राज्य रहा तत्पश्चात आपस के विरोध से लड़कर नष्ट हो गये इससे विद्या सुशिक्षा नष्ट होकर दुगुण और दुष्ट व्यसन बढ़ गये।

——

।। ओ३म् ।।

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

विश्व को आर्य बनाओ

ईश्वर पर विश्वास रखने वाले को आर्य कहते हैं

—: धर्म के लक्षण :—

महर्षि दयानन्द के पूना प्रवचन से—

परमेश्वर की आज्ञा यह धर्म, अवज्ञा यह अधर्म, विधि यह धर्म, निषेध यह अधर्म, न्याय यह धर्म, अन्याय यह अधर्म, सत्य यह धर्म, असत्य यह अधर्म। निष्पक्षपात यह धर्म, पक्षपात यह अधर्म।

अब सत्यमूलक यदि धर्म है तो सत्य क्या है? प्रमाणैरथपरीक्षणम् इस न्याय से जो अथ सत्य ठहरे वही सत्य है :

आश्रम चार हैं ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ और सन्यास।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्॥

धर्म और अधर्म ये अनेक हैं, परन्तु उनमें से विशेष रीति से ग्यारह धर्म और ग्यारह अधर्म है। उनका स्वामी जी ने विशेष विवरण किया।

इस प्रकार ग्यारह धर्म सनातन उपदिष्ट है :—

प्रथम अहिंसा का लक्षण—

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।।

अहिंसा इसका केवल "पश्वादि न मारना" ऐसा संकुचित अर्थ करते हैं। परन्तु व्यास जी ने ऐसा अर्थ किया है कि—

सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः अहिंसा ज्ञेया॥

अर्थात वैर त्याग करना।

(२) धृति-अर्थात धैर्य। राज्य जाये तो भी धर्म का धैर्य नहीं छोड़ना चाहिए, धैर्य छोड़ने से धर्म का पालन नहीं होता।

(३) क्षमा-अर्थात् सहनता, बड़े ने कोई अपकृत्य छोटे मनुष्य के लिए किया तो उसे छोटे ने सहन कर लिया यह क्षमा नहीं है। इसे असामर्थ्य कहते हैं, किन्तु शरीर में सामर्थ्य होकर बुरे का प्रतिकार न करना यही क्षमा है।

(४) दमनाम मन वृत्तिनिग्रहः-मन की वृत्तियों का निग्रह करना इसी का नाम दम है, वैराग्य ऐसा अर्थ नहीं है।

(५) अस्तेय-अन्याय से धनादि ग्रहण करना, (या) बिना आज्ञा पर पदार्थ उठा लेना स्तेय है और स्तेय त्याग अस्तेय कहलाता है।

(६) शौच-दो प्रकार का है-शारीरिक और मानसिक। उत्कृष्ट रीति से स्नानादिक विधि का आचरण करना, यह शारीरिक शौच है। किसी भी दुष्ट वृत्ति को मन में आश्रय न देना, यह मानसिक शौच है। शरीर स्वच्छ रखने से रोग उत्पन्न नहीं होते तथा मानसिक प्रसन्नता भी रहती है।

(७) इन्द्रियनिग्रह-अर्थात् सारी इन्द्रियों को न्यायपूर्वक वश में रखना। इन्द्रियों का निग्रह बड़ी युक्ति से करना चाहिये। इन्द्रियों का आकर्षण परस्पर सम्बन्ध से होता है। मनु ने कहा कि—

मात्रा स्वस्त्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामों विद्वांसमपि कर्षति॥

इस वाक्य का अर्थ-इन्द्रियां इतनो प्रबल है कि माता तथा बहिनों के साथ एकान्त में रहने में भी सावधान रहना चाहिए।

(८) धी अर्थात् बुद्धि। सब प्रकार बुद्धि को बल प्राप्त हो वैसे ही आचरण करने चाहिए, शरीर-बल के बिना बुद्धि बल का क्या

लाभ ? इसलिए शरीर-बल सम्पादन करने के लिए और उसकी रक्षा करने के लिए बहुत प्रयत्न करते रहना चाहिए।

(९) विद्या-योग सूत्र में अविद्या का लक्षण किया हुआ है।
अनित्याशुचिदु खानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या।
तस्य हेतुर विद्या।

अविद्या अर्थात् विषयासक्ति, ऐश्वर्यभ्रम, अभिमान यह है। बड़े २ पाठान्तर करने से ही केवल विद्या उत्पन्न नहीं होती। पाठान्तर यह विद्या का साधन होगा। यथार्थ दर्शन ही विद्या है। (यथाविहित ज्ञान विद्या है) प्रभा के विरुद्ध भ्रम है, विद्या में भ्रम नहीं होता। अनात्मनि आत्मबुद्धिः अशुचि पदार्थं शुचि बुद्धिः यह भ्रम है। यही अविद्या का लक्षण है और इसके विरुद्ध जो लक्षण है वे विद्या के हैं।

जिस पुरुष को यह अभिमान होता है कि मैं धनाढ्य हूँ वा मैं बड़ा राजा हूँ उसे अविद्या का दोष है। दूसरा शरीर का क्षीण रहना, यह अविद्या के कारण ही होता है। इससे सब प्रकार की विद्या सम्पादन करने के विषय में प्रयत्न करते रहना चाहिए। हमारे देश में न्यून अवस्था में विवाह करने की रीति के कारण विद्या-सम्पादन करने में अड़चन होती है। अपवित्र पदार्थ में पवित्रता मानना यह अविद्या है। ईश्वर का ध्यान. यह पूर्ण विद्या है। यह सारी विद्याओं का मूल है। किसी भी देश में इस विद्या का ह्रास (न्यूनता) होने से इस देश को दुर्दशा आ घेरती है।

(१०) सत्य—तीन प्रकार की है, सत्य-भाव सत्य-वचन, सत्य-क्रिया। सत्य-भावना होनी चाहिए, सत्य भाषण करना चाहिए और सत्य आचरण तो करना ही चाहिए। किसी प्रकार का विकल्प मन में न होना चाहिए। असत्य का त्याग करना चाहिए। विकल्प का लक्षण योग सूत्र में किया है कि—

शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशुन्यो विकल्पः ।

सम्भव कौन सा और असम्भव कौन सा, इसका विचार करना चाहिए। कुम्भकर्ण के विषय में तुलसीदास जी का दोहा है कि—

जोजन एक मूँछ रही ठाढ़ी, जोजन चार नासिका बाढ़ी।

देवमामलेदार की कोई बात उड़ाते है कि उसने अपने वचन से पुरुष को स्त्री बना दिया था ! ऐसी असम्भाव्य बातें हमारे देश में बहुत सी फैल गई है। इसलिए प्रमाणों के सहायता से अर्थ विवेचन करके देखने से विचार के अन्त में निश्चय होता है कि झूठ बात कौन सी और सच्ची बात कौन सी है।

११ अक्रोध-बड़ा भारी जो क्रोध उत्पन्न होता है, उसका सर्वथा त्याग करना चाहिए। स्वाभाविक क्रोध कभी नहीं जा सकता परन्तु उसे भी रोकना, मनुष्य का धर्म है। क्रोधाधीन होने से बड़े-बड़े अनर्थ होते हैं।

इस प्रकार का एकादशीलक्षणी सनातन धर्म है, (जो मनुष्य मात्र का कर्तव्य है।)

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशाद् अगजन्मन।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

व्यवहार धर्म की ओर भी ध्यान देना चाहिए। सारी दुनिया में इसो आर्यावर्त से विद्या गयी। इस आर्यावर्त देश के आर्य पुरुषों के वैभव का वर्णन जितना भी किया जाए थोड़ा है। समुन्द्र पर चलने वाले जो जहाज, उन पर कर लेने की आज्ञा मनु ने अष्टमाध्याय में लिखा है—

समुद्रयानकुशला देशकालार्थदर्शिनः ।
स्थापयन्ति तुर्या वृद्धि सा तत्राधिगमं प्रति ॥

इससे स्पष्ट है कि समुन्द्र यानादिक पहले हमारे लोग बनाया करते थे। अधर्म-अर्थात् अन्याय, इसका विचार करना चाहिए। मनु ने ऐसा लिखा है कि

मानसिक कर्मों में से तीन मुख्य अधर्म है। (परद्रव्येष्वभि-ध्यानम् अर्थात् लोगों का बुरा चिन्तन करना, मन में द्वेष करना, ईर्ष्या करना, वितथाभिनिवेश अर्थात् मिथ्या निश्चय करना। वाचिक अधर्म चार है-पारूष्य अर्थात् कठोर भाषण। सब समय सब ठोर मृदु भाषण करना यह मनुष्यों को उचित है। किसी अन्धे मनुष्य को "आ अंधे ऐसा कहकर पुकारना निःसंदेह सत्य है परन्तु कठोर भाषण होने के कारण अधर्म है।

उपरोक्त धर्म की मर्यादा का पालन करने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के फलों की धार्मिक विद्वान वेदोक्त धर्म का पालन करने से मोक्ष की प्राप्ति का साधन है न कि गंगा स्नानादि तीर्थ और न हो एकादशी व सत्यनारायण की कथा का व्रत आदि रखने से मोक्ष नहीं होता। पाखण्डी गुरूडम का पाखण्ड आज देश और राष्ट्र के लिए अभिशाप बना हुआ है। वेद विरोधी पाखण्डियों से बचे और बचाये। मूर्ति पूजा भी वेद विरुद्ध है।

संग्रहकर्त्ता :—

पुष्करलाल आर्य

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्म राजन्याभ्याँ शूद्राय चार्याय चस्वाय चारणाय।

यजु० २६।२

परमेश्वर कहता है कि (यथा) जैसे मैं (जनेभ्यः) सब मनुष्यों के लिए (इमाम्) इस (कल्याणीम) कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख देनेहारी (वाचम्) ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का (आ वदानि) उपदेश करता हूँ वैसे तुम भी किया करो। यहाँ कोई ऐसा प्रश्न करे कि जन शब्द से द्विजों का ग्रहण करना चाहिए क्योंकि स्मृत्यादि ग्रन्थों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ही के वेदों के पढ़ने का अधिकार लिखा है। स्त्री शूद्रादि वर्णों का नहीं। इसका उत्तर वेदार्थ में ही दिया है। ब्रह्म राजन्याभ्याम् इत्यादि देखो परमेश्वर स्वयं कहता है कि हमने ब्राह्मण, क्षत्रिय, (अर्य्याय) वैश्य (शूद्राय) शूद्र और (स्वाय) अपने भृत्य वा स्त्रियादि (अरणाय) और अतिशूद्र के लिये भी वेदों का प्रकाश किया है।

गीता अध्याय १५ श्लोक १६ और १७

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्में त्युदाहृतः।
यो लोक त्रयमा विश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥

अर्थ—हे अर्जुन इस संसार में नाशवान और अविनाशी दो प्रकार के पुरुष हैं। सम्पूर्ण प्राणियों के शरीर भूत तो नाशवान हैं। और जीवात्मा अविनाशी है। (यहाँ जीव को ब्रह्म का अंश नहीं बताया गया है।

इन दोनों से उत्तम पुरुष तो अन्य ही है। जो तीनों लोकों में प्रवेश कर धारण पोषण करता है। इस प्रकार वह अविनाशी परमात्मा कहा गया है। इस श्लोक में श्रीकृष्ण महाराज ने अपने को ईश्वर नहीं बताया है।

पुस्तक प्राप्ति स्थान

१२१ काटन स्ट्रीट
कलकत्ता ७

१०, किशन लाल बर्मन मार्ग
(बाँधा घाट) सलकिया हवड़ा-६

आर्य समाज हवड़ा
३८ क्षेत्र मित्र लेन, सलकिया, हवड़ा-६